[हास्य-रस-संबंधी उपन्यास]

लेखक

श्रीयुत 'अरुण' बी० ए०

भारत-भर की पुस्तकें मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

२६, लाटूश रोड

लखनऊ

प्रथमावृत्ति संवत् २००१ वि०

मूल्य २)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली—दिल्ली-गंगा-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ
२. प्रयाग—प्रयाग-गंगा-ग्रंथागार, गोविंद-भवन
३. काशी—काशी-गंगा-ग्रंथागार, मच्छोदरी पार्क
४. पटना—पटना-गंगा-ग्रंथागार, मछुआ-टोली

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलर के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके यहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

उसी को, जो मेरे जीवन में
एक आँधी की भाँति
आई और सदा
के लिये
चली गई।

२६, मारवाड़ी गली
लखनऊ
१६-८-४४

अरुण

विषय-क्रम

कंट्रोल कैसे लगा ?

प्रोफ़ेसर झा ने फ़िलॉसफ़ी का क्लास पढ़ाते-पढ़ाते जब मिस मालती को प्रणय-विज्ञान की परिभाषा समझाना आरंभ किया, तब एक बार कॉलेज के अन्य अध्यापकों और विद्यार्थियों में आलोचना की एक आँधी-सी आई, किंतु एम्० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होते ही मिस मालती का मैडम मालती बनकर मिसेज झा का अधिकार ग्रहण करना उनके दैनिक तर्क-वितर्क का विषय बन गया। कोई दंपति की पारस्परिक रुचि का उल्लेख करता, कोई उनकी आयु का अंतर समझाता। इसमें संदेह नहीं कि प्रोफ़ेसर झा विधुर थे; और दो पत्नियों के विछोह के उपरांत उन्होंने मिस मालती से विवाह करके अपनी उजड़ी हुई गृहस्थी को एक बार फिर से बसाने का प्रयत्न किया था। उनकी अवस्था ४५ से अधिक थी, मगर शरीर से वह पूर्ण युवक प्रतीत होते थे। कॉलेज में मालती की आयु १६ वर्ष की लिखी थी, मगर लोगों का कहना था, वह २२ से कम न थीं। कुछ भी हो, पूरी कोर्टशिप के बाद प्रोफ़ेसर ने मालती के हृदय पर विजय पाई थी, ऐसी उनकी निजी धारणा थी।

दबे मुँह लोग उनके विवाह को 'सुविधा का विवाह' और 'स्वार्थ-संबंध' कहते। यह भी मशहूर हो चला था कि

प्रोफ़ेसर की लंबी तनख़्वाह के लालच में मालती ने उनसे नाता जोड़ा था, संभव है, इस कथन में कुछ सत्यता हो। प्रत्यक्षतया तो दोनो में ख़ूब पटती थी।

प्रोफ़ेसर झा सामाजिक जीवन में अपने दांपत्य जीवन का आदर्श चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा करते रहते थे, किंतु घर के भीतर की बात और ही थी।

प्रोफ़ेसर साहब विदेशी डिग्रियों से विभूषित होते हुए भी अपनी भारतीय संस्कृति को अंशतः मानते थे, और मैडम मालती सोलहो आने विदेशी जामा पहन चुकी थीं। कभी-कभी दोनो में ख़ासी झपट हो जाती थी, यद्यपि झगड़े से दूर रहने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण प्रोफ़ेसर साहब ऐसे अवसरों पर मौन धारण कर लेते या बाहर निकल जाते थे। मैडम इसे अपनी विजय समझकर फूली न समातीं, और अपने मन की करती थीं।

रूपवती सहधर्मिणी को प्रसन्न रखने की चेष्टा में पत्नी-परायण प्रोफ़ेसर की मासिक तनख़्वाह की एक-एक पाई ख़र्च हो जाती, मगर मैडम की फ़र्मायशें पूरी न हो पातीं। आए-दिन नई पोशाक, सेंट, पाउडर, क्रीम, ज़ेवर और पैसे की माँग बनी रहती, जिसके पूरा न होने पर दंपति में नोक-झोंक चलती रहती। एक साल तक प्रोफ़ेसर ने जैसे-तैसे निर्वाह किया, और वह क़र्ज़दार भी हो गए, परंतु मैडम का स्वभाव न बदला। फलतः प्रोफ़ेसर ने गंभीर अध्ययन और मनन के पश्चात् कुछ

निश्चय कर डाला। वर्तमान महायुद्ध छिड़ चुका था, और 'कंट्रोल' की परिस्थिति आ गई थी। अतएव प्रोफ़ेसर ने अपनी धर्मपत्नी की प्रगति और प्रवृत्ति पर भी 'कंट्रोल' लगाने की सोची। वह सफल हुए या असफल, इसका निर्णय करना कठिन है। इतना अवश्य हुआ कि 'कभी नाव छकड़े पर और कभी छकड़ा नाव पर।' यह कहावत चरितार्थ होने लगी। मैडम की चातुरी के आगे कभी प्रोफ़ेसर पराजित होते, और कभी उनकी युक्तियों से मैडम को मात खानी पड़ती। उनके दांपत्य जीवन में 'कंट्रोल' ने हड़कंप मचा दिया, कैसे ? यह आगे पढ़कर देखिए।

(१)

चाय की चकल्लस

(१)

आएदिन घर में सत्याग्रह और भूख-हड़ताल !

इसीलिये कि मैडम मालती को नए बावर्ची के हाथ का खाना सख्त नापसंद !

झुँझलाकर प्रोफ़ेसर झा ने बावर्ची को जवाब दे दिया। नया आदमी और ढूँढ़ा गया, मगर मिला ही नहीं। लड़ाई के ज़माने में नौकरों का क्या पूछना—बड़े दिमाग़ चढ़े हुए। खाने-पीने का सारा बंदोबस्त आ पड़ा मैडम मालती पर !

लाचारी का इलाज क्या !

दो-चार दिन पति-पत्नी में लड़ाई-झगड़ा, और उसके बाद मैडम का रूठना !

मगर प्रोफ़ेसर के लाड़-प्यार ने उन्हें फिर मना लिया—यह था पॉलिसी का शस्त्र ! समुद्र के ज्वार-भाटे की तरह दंपति का प्रेम भी घटता-बढ़ता रहता था, क्योंकि बिना इसके घरेलू जीवन में मज़ा क्या ?

फिर मैडम मालती एम० ए० पास थीं, और एम० ए० पास बीबी की इज़्ज़त करना प्रोफ़ेसर झा का फ़र्ज़ था। रहा लड़ाई-झगड़ा—इसमें कोई ख़ास बात नहीं, यह तो हर घर में होता ही रहता है।

विग्रह-संधि के इस नाटक में यवनिका न गिरे, इतना ही

नायक-नायिका को ध्यान रखना आवश्यक होता है, वैसे कोई बात नहीं।

यदि खटाई न हो, तो लोग मिठाई से ऊब जायँ !

(२)

उसी दिन सवेरे—

मैडम मालती के पतिदेव यानी प्रोफ़ेसर झा पलंग पर बेचैनी से करवटें बदल रहे थे, मगर उनका सोना या जागना समझना कठिन था।

घड़ी की सुइयाँ साढ़े सात बजा रही थीं। प्रोफ़ेसर के उठने का वक़्त हो चुका था, और मैडम उधर सोच रही थीं कि अभी तक चाय क्यों नहीं आई ?

पिछली रात देर तक काम करने की वजह से प्रोफ़ेसर के सिर में दर्द था, और वह सोच रहे थे कि कितना अच्छा होता, जो कोई मुझे चाय बनाकर पलंग पर ही पिला जाता !

उनकी बीच-बीच में खुलने-बंद होनेवाली दाहनी आँख कम-से-कम यही ज़ाहिर कर रही थी। और, प्रोफ़ेसर को चाय मिलनी ही चाहिए। मालती से इतना भी नहीं होता ? यह तो उसका फ़र्ज़ है—वह उनकी धर्मपत्नी है, और पत्नी को पति की सेवा करनी ही चाहिए। वैसे तो प्रोफ़ेसर उससे कभी कहते ही नहीं, ख़ुद ही रोज़ाना सवेरे उठकर चाय बना लेते हैं, मगर क्या मालती एक दिन भी नहीं बना सकती ?

मालती को उठना ही चाहिए चाय बनाने के लिये।

बड़े साहस से प्रोफ़ेसर ने करवट लेकर धीरे से पुकारा—

"डियर मालती !"

कोई जवाब न मिला, सिर्फ़ मालती की नाक ज़रा ज़ोर से बजने लगी। प्रोफ़ेसर ने फिर आवाज़ दी—

"हलो डियर !"

बिलकुल ख़ामोशी—कोई जवाब नहीं।

"अरे ! क्या उठोगी नहीं ?"

फिर भी सन्नाटा—मालती की नाक का स्वर यथावत् सुन पड़ता था। "डियर ! सुनती हो, ज़रा—"

प्रोफ़ेसर झा ने इसके बाद न-जाने कितने प्यार-भरे संबोधनों के कोष खोल डाले, मगर श्रीमतीजी टस से मस न हुईं, ऐसी घोड़े बेचकर सोई थीं।

प्रोफ़ेसर ने एक ठंडी साँस ली। अपने दांपत्य जीवन की विषमता को अपना ही अपराध समझकर वह चुप हो रहे।

दस मिनट बाद—

मालती ने करवट ली। आहट से ही प्रोफ़ेसर ने पुकारा—

"डियर मालती !"

कोई जवाब न मिला।

तब ?

(३)

तब प्रोफ़ेसर झा काँखते-कूँखते पलंग से उठे, कपड़े

सँभाले, आइने में मुँह देखा, सिर के बालों पर ब्रुश फेरा, और चप्पलें पहनकर आहिस्ता-आहिस्ता मेडम के पलंग के पास आए। वह सोचने लगे—

मालती क्या सचमुच सो रही थी ?

प्रोफेसर ने धीरे से उसका कंधा पकड़कर हिलाते हुए कहा—

"रानी !"

मालतीदेवी घबराकर उठ बैठीं और आँखें जरूरत से ज्यादा मलते हुए बोलीं—

"क्यों ? क्या है ? सोना हराम कर रक्खा है तुमने !"

प्रोफेसर सिटपिटा गए। कुछ ठहरकर बोले—

"नहीं-नहीं, कोई बात नहीं डियर ! मैं तो सिर्फ यह कहना चाहता था कि आज के रोज........"

बात काटकर मेडम ने उत्तर दिया—

'क्या आज के रोज ?"

"कुछ नहीं—कुछ भी नहीं—एक जरा-सी बात थी।"

"जरा-सी बात क्या ? तुम बिलकुल जंगली हो प्रोफेसर ! मुझे जगा दिया नाहक।"

मेडम ने फिर मुँह ढक लिया लिहाफ से। प्रोफेसर ने बड़ी हिम्मत से फिर कहा—

"तुम्हें—अगर तकलीफ न हो, तो—"

मैडम ने उठते हुए कहा—

"तकलीफ़ बहुत है, क्योंकि तुम सबेरे-सबेरे मेरा मग़ज़ चाट रहे हो, सोने भी नहीं देते।"

"एक काम कर देतीं डियर!"

"काम—कैसा काम?"

"कुछ नहीं, ज़रा उठकर आज चाय बना लातीं, तो—"

मैडम के दिमाग़ का पारा चढ़ गया, गरज पड़ीं—

"हूँ, चाय बना लाती? क्यों? तुम पलंग पर पड़े-पड़े ख़र्राटे लो और मैं जाकर चाय बनाऊँ? प्रोफ़ेसर! तुम्हारा दिमाग़ तो नहीं फिर गया है?"

भीगी बिल्ली की तरह सिर खुजाते-खुजाते प्रोफ़ेसर बोले—

"नहीं-नहीं, मेरा यह मतलब नहीं था कि तुम्हें तकलीफ़ दूँ, मगर—मगर तुम जानती हो कि कल रात से मेरे सिर में बेहद दर्द है, इसलिये मैंने सोचा कि अगर मैं सबेरे-सबेरे उठकर हवा में निकलूँगा, पानी छूना पड़ेगा, तो मुमकिन है, तबियत ज़्यादा ख़राब हो जाय।"

"वाह वा—तो आपने मुझे ही फालतू समझा, जो अँधेरे मुँह उठकर स्टोव से दोस्ती करूँ, और चाय बनाऊँ, क्यों? देखो इधर, हाथ लाओ अपना, मेरे दिल की धड़कन कितनी बढ़ गई है। सारी रात नींद नहीं आई। याद है, डॉक्टर बोस ने क्या कहा था—इन्हें पूरे आराम की जरूरत है! अब तुम्हीं बताओ, मुझसे चाय बनवाने की उम्मीद?"

मालतीदेवी कुछ उदास हो गईं। प्रोफ़ेसर ने पास बैठकर उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—

'मुझे याद न था डियर! जाने दो, आज चाय न सही!"

वह उठ खड़े हुए।

मालती ने उनकी तरफ़ घूरते हुए कहा—

"न सही? न सही कैसे? आज तक मैंने एक दिन भी चाय नहीं छोड़ी—बचपन से बराबर पीती हूँ, फिर मुझे तो चाय मिलनी ही चाहिए। न पिऊँगी, तो बीमार हो जाऊँगी।"

प्रोफ़ेसर साहब काँपते-काँपते बोले—

"अच्छी बात है डियर! इस कड़ाके की सर्दी में मुझे आज न्यूमोनिया ही क्यों न हो जाय, मगर—जाता हूँ। चाय तुम्हारे लिये जरूर बनाऊँगा, और फिर दिन में तुमसे बातें होंगी। सो रहो तब तक तुम।"

प्रोफ़ेसर रसोई-घर की तरफ़ चले, और मालती फिर लिहाफ़ के अंदर!

(४)

थोड़ी देर बाद—

प्रोफ़ेसर साहब चाय की ट्रे लिए हुए एक फुर्तीले बैरे की तरह मैडम के पलंग के पास खड़े-खड़े पुकार रहे थे—

"डियर! उठो, चाय पी लो।"

श्रीमतीजी ख़ुशी-ख़ुशी उठ बैठीं। आइने में चेहरा देखा, बाल सँवारे, फिर इठलाती हुई आकर बड़े तपाक से कुर्सी पर बैठ गईं, और चाय बनाते हुए बोलीं—

"प्रोफ़ेसर! बड़े अच्छे हो तुम—थैंक्स!"

प्रोफ़ेसर ने पत्नी की ओर देखा—कितनी सुंदर थी मालती! हल्के केसरिया रंग की साड़ी उसके गठे हुए गोरे तन पर कैसी भली मालूम होती थी! बड़ी-बड़ी आँखों पर सुनहले फ़्रेम का अमेरिकन चश्मा और मुस्किराते हुए गुलाबी होठ! प्रोफ़ेसर का हृदय प्रसन्नता से खिल उठा।

चाय बनाने की मेहनत और जाड़े की शिद्दत, सब कुछ वह भूल गए।

मालतीदेवी चाय पी रही थीं। प्रोफ़ेसर ने भी अपना प्याला उठाया। मालती ने कहा—

"डियर! तुम्हें बड़ी तकलीफ़ दी मैंने, मगर—माफ़ करना—हाँ।"

प्रोफ़ेसर ने मुस्किराते हुए जवाब दिया—

"तकलीफ़? नहीं-नहीं रानी! ऐसा न कहो। यह तो मेरा फ़र्ज़ था।"

प्रोफ़ेसर की बात सुनकर मालती सोचने लगी—

बातें बनाने में प्रोफ़ेसर पूरे उस्ताद हैं। मुझे क़ाबू में लाने की तरकीबें हैं सब, मगर यह मुझे सवेरे उठकर चाय बनाने को मजबूर नहीं कर सकते। यह कह भी नहीं सकते मुझसे कुछ—मेरा भी कुछ अधिकार है। माना कि किसी रोज़ मैं चाय बनाती हूँ, मगर इनकी आदत तो बुरी है। एक दफ़ा चाय बनाई कि फिर हमेशा बनानी पड़ेगी। मर्द लोग उँगली

छूते हाथ पकड़ते हैं। उनका यही तरीक़ा होता है। हुकूमत की बागडोर कभी ढीली न छोड़नी चाहिए औरत को, अगर वह अपना जीवन सुखी बनाना चाहती हो। और फिर— मैं तो एम्० ए० पास हूँ। पढ़ी-लिखी पत्नी के प्रति प्रोफ़ेसर का यह अन्याय है, जो यह आशा रखते हैं कि मालती नौकर की तरह मेरे लिये रोज़ चाय बनाए, खाना पकाए, और घर का इंतज़ाम देखे। मैं कभी चाय न बनाऊँगी।

मालती ने कहा—

"डियर! बावर्ची का इंतज़ाम हुआ कुछ?"

प्रोफ़ेसर ने उत्तर दिया—

"हाँ-हाँ, कई लोगों से कह रक्खा है। बहुत जल्द कोई बावर्ची आ जायगा।"

"कह रक्खा है, मगर ख़ुद ही क्यों नहीं तलाश करते? मुझे होटल का खाना नुक़सान करता है।"

"बेशक, तुम होटल का खाना न खाया करो डियर!"

प्रोफ़ेसर ने घड़ी पर नज़र डाली, और उठ खड़े हुए।

मालती ने पूछा—

"बावर्ची कब आएगा, बतलाइए?"

प्रोफ़ेसर सोचने लगे कि मैंने ज्योतिष क्यों नहीं पढ़ी। वह बोले—

"तलाश करूँगा आज।"

प्रोफ़ेसर बाथ-रूम की ओर चले। मैडम ने कहा—

"कल तक आ जाना चाहिए, जैसे भी हो।"

"आ जायगा।"

इतना कहकर प्रोफ़ेसर ने बाथ-रूम का द्वार बंद कर लिया।

(५)

अगले दिन दोपहर को खाना खाते समय मालती ने पूछा—

"बावर्ची का इंतजाम हुआ ?"

प्रोफ़ेसर ने उत्तर दिया—

"हो जायगा।"

"हो जायगा—हो जायगा—यह तो महीनों से सुन रही हूँ। यह तुम्हारी सुस्ती है प्रोफ़ेसर! मुझे कितनी तकलीफ़ होती है, तुम नहीं जानते। ख़याल ही नहीं तुम्हें। मेरे दिल की धड़कन—ओफ़—देखो—देखो—कितनी बढ़ती जा रही है।"

प्रोफ़ेसर ने पानी का गिलास मुँह से लगाते हुए कहा—

"परवाह मत करो, दो-एक दिन में सब ठीक हो जायगा। इंजेक्शन तो लग ही रहे हैं डियर!"

"नान्सेन्स! इंजेक्शन लगने से फ़ायदा क्या, जब मुझे घर के काम से छुट्टी नहीं कि घड़ी-भर आराम कर सकूँ।"

"धीरज रक्खो डियर! सब कुछ ठीक हो जायगा।"

"क्या—क्या ठीक हो जायगा ?"

"वही—तुम्हारा मर्ज़।"

"ओह—ऑफ़ुल! प्रोफ़ेसर, तुमने मुझे क्या अपना ख़िदमतगार समझ रक्खा है ?"

"खिदमतगार ? हाँ,-नहीं तो—बात यह है कि कल सवेरेवाला मामला ज़रा सोचो डियर! देखो, मैं पुरुष हूँ, और तुम हो स्त्री !"

"डेम इट—इससे क्या ?"

"मतलब यह कि तुम मेरी विवाहिता पत्नी हो, और मैं तुम पर पति के सारे अधिकार पा चुका हूँ।"

आँखें चमकाती हुई मेडम उठ खड़ी हुईं, और बोलीं—

"तो—क्या हुआ ? क्या कर लोगे तुम मेरा ?"

प्रोफ़ेसर ने नरमी से उत्तर दिया—

"कुछ नहीं, मैं सिर्फ़ यह कह रहा था कि तुम्हारा फ़र्ज़ है घर का काम-काज करना, और अगर तुम अपना फ़र्ज़ पूरा नहीं करतीं, तो यह तुम्हारी ग़लती है। मेरा यह काम नहीं कि मैं रोज़ सवेरा होते ही उठकर चाय बनाऊँ, और तुम्हें पिलाऊँ। मैं भागा-भागा फिरूँ ठंड में, और तुम पड़े-पड़े देखा करो ! तुम्हें शर्म भी नहीं आती ?"

मालतीदेवी धम्म से धरती पर बैठ गईं, फिर कुछ सोच-कर उठ पड़ीं, और कड़ककर कहने लगीं—

"शर्म—कैसी शर्म ? इंजस्टिस, बेइंसाफ़ी ! तुम ज़ुल्म करते हो मुझ पर, शर्म तुमको आनी चाहिए। प्रोफ़ेसर ! एटीकेट, तहज़ीब कुछ भी नहीं जानते तुम।"

"नहीं जानता, तो न सही, तुम तो जानती हो ? मेरा सुख........"

बात काटकर मालती बोली—

"ओह ! होपलेस् ! कैसे समझाऊँ प्रोफ़ेसर ! तुमने मेरी ज़िंदगी बरबाद कर दी !"

प्रोफ़ेसर ने देखा, मामला तूल पकड़ रहा है। वह धीरे-धीरे कहने लगे—

"अच्छा-अच्छा, डियर ! नाराज़ मत हो, दो-चार रोज़ की बात है। जब तक बावर्ची न आ जाय, तभी तक बना लिया करो चाय ?"

"ओह ! पागल हो गए हो प्रोफ़ेसर !"

मालती गुस्से से पैर पटकती हुई अपने कमरे में चली गई।

खाना समाप्त करके प्रोफ़ेसर भी बाहर निकल गए।

दांपत्य जीवन की वह उलझन जहाँ-की-तहाँ बनी रही, मगर मालती का गुस्सा बढ़ता गया।

(६)

दूसरे दिन—

बड़े कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था, मानो बर्फ़ गल रही हो।

मैडम मालती सबेरे के समय अपने लिहाफ़ के भीतर ख़ूब गरमाई हुई पड़ी थीं। घड़ी साढ़े सात बजा चुकी थी। प्रोफ़ेसर की आवाज़ सुन पड़ी—

"डियर ! उठो, चाय का वक़्त हो गया।"

सचमुच कोई जवाब न मिला। प्रोफ़ेसर ने फिर पुकारा—

"हलो रानी ! उठो, मुझे कॉलेज जाना है।"

मालतीदेवी ने लिहाफ़ के भीतर से ही उत्तर दिया—

"उहुँः, मेरे दिल की धड़कन कल रात से बढ़ गई है, तबियत ख़राब है, मैं नहीं उठ सकती। कहीं ठंड लग गई, तो लेने के देने पड़ जायँगे।"

प्रोफ़ेसर बोले—

"परवा न करो, मैं दवा ले आऊँगा। उठ जाओ डियर !"

"उहुँः, मुझे सर्दी में उठकर जान नहीं देनी अपनी। ऐसी चाय की परवा भी नहीं मुझे। और, शायद तुम इतने ख़ुदग़र्ज़ नहीं हो प्रोफ़ेसर कि सिर्फ़ अपने लिये चाय बनाने की तकलीफ़ मुझे देना पसंद करो। समझ गए डियर ?"

"तो चाय न बनाई जाय—क्या मतलब है तुम्हारा ?"

"नहीं-नहीं, तुम चाहो, तो अपने लिये बना लो, और फिर, जी चाहे, तो मेरे लिये एक प्याला बना लेना। मगर रहने दो, न बनाना। मुझे ऐसी चाय की परवा नहीं कुछ। देखा जायगा। ले आओगे बनाकर, तो पी ही लूँगी तुम्हारी ख़ातिर। मगर ज़रा तेज़ बनाना प्रोफ़ेसर ! हाँ, तुम बड़े अच्छे हो डियर !"

प्रोफ़ेसर ने कुछ न कहा। अपना ऊनी ओवरकोट पहनकर चुपचाप रसोई-घर में पहुँचे, और एक पत्नी-भक्त पति की भाँति चाय तैयार करके पलंग के पास ले आए, फिर बोले—

"डियर ! चाय तैयार है।"

मालती ने उठते-उठते कहा—

"ओ थैंक यू—थैंक यू डियर! तुम बहुत अच्छे हो!"

प्रोफ़ेसर को जोर से छींक आ गई। मालतीदेवी चाय-पान करने लगीं।

(७)

अगले दिन साढ़े सात बजे सबेरे—

वही दैनिक वेला—मालतीदेवी चाय पीने का वक्त समझकर अपने आप जग पड़ीं। लिहाफ़ के भीतर से आधा मुँह निकालकर देखा कि शायद प्रोफ़ेसर रोज़ाना की हरकतें शुरू करें, मगर वहाँ सन्नाटा था।

प्रोफ़ेसर अपने पलंग पर पड़े-पड़े उस रोज़ इतमीनान से खर्राटे लगा रहे थे।

घड़ी में आठ बजा। प्रोफ़ेसर तो उठने का नाम ही नहीं लेते।

मालती ने सोने की कोशिश की, मगर करवटें बदलते रहने पर भी नींद न आई। चाय के बिना वह बेचैन हो उठीं। मैडम मालती की तबियत गड़बड़ाने लगी!

मैडम ने सोचा—बात क्या है? प्रोफ़ेसर की नींद अभी तक नहीं टूटी? वह धीरे से उठीं, और प्रोफ़ेसर के पलंग के पास जाकर, लिहाफ़ में मुँह डालकर बोलीं—

'ऊ—ऊ—ऊ—ऊ!"

प्रोफ़ेसर चुप थे।

मालती ने उनकी खोपड़ी पर बालों में उँगलियाँ नचाते हुए प्यार से कहा—

"ऊ—ऊ—ऊ—ऊ—ऊ !"

कोई जवाब न मिला। सिर्फ़ प्रोफ़ेसर ने करवट बदली। उसने प्रोफ़ेसर का कंधा पकड़कर हिलाते हुए कहा—

"सुनते हो जी ?"

प्रोफ़ेसर झुँझलाकर बोल उठे—

"उहुँः, सोने भी दो, क्यों हाय-हाय मचाई है ?"

उन्होंने लिहाफ़ खींचकर मुँह ढाँक लिया।

मालती ने फिर उनके मुँह से लिहाफ़ हटाते हुए कहा—

"चाय का बंदोबस्त किया या नहीं ?"

प्रोफ़ेसर बोले—

"उहुँः, कौन करे, हटाओ भी। मुझे चाय की जरूरत नहीं अब।"

मालती चौंककर कहने लगीं—

"पर, मुझे तो है जरूरत—तुमने यह रोजा कब से रक्खा है डियर ?"

"रोजा ? नहीं डियर ! बात यह है कि तुम कहती थीं कल कि तुम्हें चाय की परवा नहीं। फिर मैंने सोचा, क्या करूँ बनाकर अपने लिये। एक तो मुफ़्त की तकलीफ़ और हैरानी, दूसरे चाय नुक़सान भी करती है।"

"किसको ?"

"तुमको डियर ! जिसे दिल की धड़कन बढ़ने का मर्ज़ हो, उसे चाय से दूर रहना चाहिए। डॉक्टर बोस भी कहते थे।"

"हूँ-हूँ, मगर तुम क्यों नहीं बनाकर पी लेते ?"

"मैं ? अरे, मैंने तो इंतज़ाम कर लिया था। कल रात को होटल से चाय बनवाकर थरमास में ले आया था। वही सवेरे सात बजे उठकर मैंने पी ली। मेरी चिंता न करो डियर ! जाओ, तुम सो जाओ। बड़ी अच्छी है मेरी रानी मालती !"

प्रोफ़ेसर ने लिहाफ़ के भीतर मुँह छिपा लिया, और ख़र्राटे लेने लगे।

और मालती ????

❀ ❀ ❀

अगले दिन—

पति-पत्नी में सुलहनामा हो गया।

उसकी शर्तों के मुताबिक़ अब पारी-पारी से प्रोफ़ेसर और मालती चाय बना लेते हैं।

बावर्ची अभी तक नहीं मिला। मिलेगा या नहीं? कौन जाने।

मालती कभी-कभी सोचती हैं—

शायद जान-बूझकर प्रोफ़ेसर कोई बावर्ची नहीं रखते।

संभवतः उनका अनुमान सत्य हो।

---

(२)

पोशाक का पचड़ा

(१)

उस रोज़—

डॉक्टर बोस के साथ बँगले के पक्के कोर्ट में टेनिस खेलते समय मैडम मालती की रेशमी साड़ी पैर के जूते में फँस गई, और वह कलाबाज़ी खा गईं !

नाक घिस गई, कुहनियाँ छिल गईं, घुटने फूट गए, चश्मा टूट गया, और पैर में भयंकर मोच आ गई ! मलहम-पट्टी और लिनीमेंट आयोडेक्स की मालिश के बाद जब प्रोफ़ेसर रात को सामने पहुँचे, और इस दुर्घटना पर शोक प्रकट किया, तब मालती की ज़बान मशीनगन की तरह चल पड़ी। वह बोलीं—

"रहने दो यह ज़बानी हमदर्दी—तुम्हें ही मुबारक हो।"

प्रोफ़ेसर उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—

"तो फिर बतलाओ डियर ! मैं क्या करूँ ? डॉक्टर बोस को बुलवा लिया होता ?"

"आपकी बला से—सभी आपकी तरह थोड़े ही हैं ? उन्हीं की बदौलत तो मैं बोलने लायक़ हुई, वरना ऐसी बेहोशी आई थी कि शायद मर भी जाती।"

"क्या ज़्यादा चोट आ गई ?"

"ज़्यादा ? ओफ़् ! मर जाती, तो शायद तुम्हें विश्वास होता। प्रोफ़ेसर ! कितने कठोर हो तुम ?"

"नहीं-नहीं, ईश्वर की कृपा से तुम जल्द ठीक हो जाओगी। धीरज रक्खो। मुझे इस दुर्घटना के लिये सचमुच अफ़सोस है।"

यह सब कुछ नहीं। कोरे अफ़सोस से काम न चलेगा— मेरे लिये शार्ट्स (जाँघिए) सिलवा दो आधे दर्जन।"

प्रोफ़ेसर मानो आसमान से गिर पड़े। चौंककर बोले—

"शार्ट्स ? शार्ट्स का क्या होगा ?"

"क्या होगा ? साड़ी पहनकर मैं टेनिस नहीं खेलूँगी अब। इसी वजह से मेरी हड्डियाँ-पसलियाँ टूट गई हैं आज। आयंदा शार्ट्स पहनकर खेला करूँगी।"

"तुम क्या कह रही हो डियर ?"

"मैं ठीक कह रही हूँ—शार्ट्स का ऑर्डर आज ही दे दो।"

"मगर, औरतें कहीं शार्ट्स पहनती हैं ?"

"बेशक पहनती हैं—इतना भी नहीं जानते तुम ?"

"मैंने तो आज तक किसी को पहने नहीं देखा !"

"यह तुम्हारी आँखों का क़सूर है और दिमाग़ की ख़ूबी ! विलायत में खेल-कूद के मौक़ों पर औरतें यही पहनती हैं।"

"किंतु विलायत में पहनती होंगी, हिंदोस्तान में इसका रिवाज........"

बात काटकर श्रीमतीजी उबल पड़ीं—

"रिवाज है क्यों नहीं—मिसेज स्मिथ, मिस पेरी, मिस लिलियन को जिमखाना क्लब में नहीं देखा पहने हुए ?"

"वे अँगरेज़ हैं, पहना करें, तो क्या हुआ। हिंदोस्तानी औरतों को नहीं पहनना चाहिए।"

"क्यों ? क्या हिंदोस्तानी औरतें औरतें नहीं हैं ?"

"कितनी भद्दी पोशाक होती है शार्ट्स—तीन चौथाई टाँगें खुली हुई—वाह !"

"तुम्हारी बातों पर तरस आता है मुझे—प्रोफ़ेसर ! क्या सचमुच तुमने लंदन और पेरिस की युनिवर्सिटियों से डिग्रियाँ हासिल की हैं ? वाक़ई तुम विदेश-यात्रा कर आए हो ?"

"हाँ-हाँ, गया बेशक था, मगर वहाँ की रहन-सहन वहीं के लिये ठीक है, हिंदोस्तान के लिये नहीं। तुम शार्ट्स पहनकर लंगूर-ऐसी उचक-फाँद मचाओ, तो मेरे कॉलेज के प्रोफ़ेसर और विद्यार्थी तुम्हें देखकर क्या कहेंगे ? तुम्हें शर्म भी नहीं आती ?"

"शर्म ? कैसी शर्म ? बीसवीं सदी की सभ्यता से यह फ़ैशन जुदा तो है नहीं। सब पहनती हैं विलायत में। मैं भी पहनूँगी। किसी को अच्छा लगे या न लगे। मुझे तो टेनिस खेलने में आराम मिलेगा।"

"मैं ऐसी बेहूदा पोशाक सिलाने न जाऊँगा; कुछ भी हो।"

"तो मेरे पैरों को लक़वा नहीं मार गया है। दो रोज़ बाद सही, मैं ख़ुद ही जाकर ऑर्डर दे दूँगी।"

"हर बात में ज़िद अच्छी नहीं होती डियर! ज़रा समझ से काम लिया करो।"

"समझ से काम लेना तुम्हीं को नहीं आता—बने हुए हैं पुरानी लकीर के फ़क़ीर! तुम सूट-टाई क्यों पहनते हो? पहना करो अचकन और धोती?"

"फ़ैशन उतना ही करना अच्छा, जितना बुरा न मालूम हो। तुम तो हद से आगे बढ़ती जा रही हो।"

"हद से आगे बढ़ना ही तरक़्क़ी करना है। औरतों की तरक़्क़ी का ज़माना है यह प्रोफ़ेसर!"

"क्या अच्छी तरक़्क़ी है! लंगूर बनना शार्ट्स पहनकर—आहा-हा!"

"अच्छा बस, रहने दीजिए। इस मामले में आपकी सलाह नहीं चाहिए मुझे।"

ठंडी साँस लेकर प्रोफ़ेसर चुपचाप अपने कमरे में चले गए।

(२)

'हेस्टिंग्स ऐंड लार्ड्स' की दूकान से आधे दर्जन शार्ट्स परसों ही सिलकर आ गए थे, और आ गया था १६३।।।) का बिल, जिसका भुगतान प्रोफ़ेसर झा को करना पड़ा।

श्रीमती मालती अब शार्ट्स पहनकर नित्य टेनिस खेलती हैं। उनकी इच्छा पूरी हो गई है।

प्रोफ़ेसर की नज़र जब आते-जाते मालती के शरीर पर

शोभा देती हुई उस पोशाक पर पड़ती है, तब उनकी आँखें नीची हो जाती हैं। मगर क्या करें, बेचारे चुप हैं।

वह कभी-कभी सोचते हैं—दिसंबर का जाड़ा और मैडम की यह बैशाखी पोशाक! उन्हें सन्निपात क्यों नहीं हो जाता? उल्टे वह दिनोंदिन तंदुरुस्त होती जाती हैं। हाँ, दिल की धड़-जैसी-की-तैसी है। कूदने-फाँदने में शायद घंटे-दो घंटे को यह मर्ज़ भी ख़ामोश हो जाता है।

कॉलेज में मैडम की पोशाक की चर्चा चला करती है, मगर प्रोफ़ेसर की अनुपस्थिति में—सामने नहीं।

शनिवार की शाम को—

प्रोफ़ेसर एक मीटिंग से वापस आ रहे थे। बँगले के फाटक पर एक टैक्सी रुकी। प्रोफ़ेसर ने देखा, उनके बचपन के मित्र सेठ अटलबिहारी आए थे।

वह आगे बढ़कर सेठजी से मिले, और उन्हें भीतर ले आए।

कुशल-प्रश्न के बाद सेठजी ने पूछा—

"क्यों भाई झा! घर क्या अभी तक सूना ही है? आबाद किया या नहीं? तुम्हारी दूसरी पत्नी के स्वर्गवास का समाचार तो मुझे जबलपुर में मिला था, दो साल हुए तब। आज कई बरसों के बाद तो तुमसे भेंट हुई। बतलाओ, नई भाभी लाए या नहीं?"

प्रोफ़ेसर बोले—

"लाया तो नहीं, यहीं मिल गईं !"

"यहीं मिल गईं ? कैसे, मैं नहीं समझा ।"

"कॉलेज की एक लड़की से मैंने शादी कर ली—अभी पिछले साल ।"

"मुबारक भाई ! मुबारक ! मगर इत्तिला तो देते । बारात में भी नहीं बुलाया ?"

"नहीं अटल भैया ! बारात वग़ैरा कुछ नहीं, सिविल-मैरिज कर ली मैंने ।"

"दोस्तों से छिपकर—ख़र्च बचाने के लिये—क्यों न ?"

"यह बात नहीं थी ।"

"फिर, दावत ही देते ? यहाँ ख़बर तक नहीं, और भाई दूल्हा बन चुके ! प्रोफ़ेसर होकर तुम भूल गए दोस्तों को—क्यों न भूल जाओ । रुतबा है, नाम है—हम - जैसे देहाती बनिए—क्यों पूछोगे हमें !"

"कैसी बातें करते हो भैया ! मेरे लिये तो तुम वही हो अटल !"

"अगर वही हूँ, तो फिर शादी के लड्डू खिलाओ न ? मगर खाऊँगा भाभी के हाथ से, तुम्हारे हाथ से नहीं । उनके दर्शन भी तो कराओ—हैं कहाँ ?"

"भीतर होंगी—अभी बुलाता हूँ ।"

प्रोफ़ेसर ने आवाज़ दी—

"बलदेव, ओ बलदेव !"

खिदमतगार ने आकर सलाम किया। प्रोफ़ेसर बोले—

"जा, मेम साहब को भेज दे। कहना, एक मेहमान आए हैं। और, कुछ नाश्ता ले आ।"

सेठजी कुछ देर तक प्रोफ़ेसर का मुँह देखते रहे, मुस्किराए, फिर कहने लगे—

"अच्छा भैया ! एक बात पूछूँ, बताओगे ?"

प्रोफ़ेसर ने जवाब दिया—

"पूछो, क्या पूछते हो ?"

"क्या भाभी पूरी मेम साहब हैं ?"

प्रोफ़ेसर ने सिर नीचा कर लिया। वह सोच रहे थे, क्या उत्तर दें।

इतने में सामने का परदा हटा, और श्रीमतीजी की आवाज़ उनके कानों में पड़ी—

"हलो डियर ! कौन आया है ?"

प्रोफ़ेसर की आँखें ऊपर उठीं—

शार्ट्स पहने हुए, टेनिस का रैकेट हाथ में लिए मैडम की आकृति सामने थी !

उनकी दृष्टि अपने मित्र सेठजी पर पड़ी।

जैसे कोई मुसाफ़िर रास्ते में जा रहा हो, और उसके सामने शेर आ पड़े, वैसे ही सेठजी सहसा अपने आसन से उठकर खड़े हो गए, और थर-थर काँप रहे थे !

प्रोफ़ेसर पर मानो घड़ों पानी पड़ गया हो ! कितनी बेशर्म है मालती !

मालती ने पूछा—

"बोलते क्यों नहीं प्रोफ़ेसर ?"

अपना गला साफ़ करते हुए, प्रोफ़ेसर ने सेठजी की ओर संकेत करते हुए कहा—

"यह हैं मेरे बचपन के दोस्त, सेठ अटलबिहारी। मैं तुम्हारा परिचय करा दूँ।"

मैडम ने अपना दाहना हाथ आगे बढ़ाते हुए बड़े तपाक से सेठजी से कहा—

"वेरी ग्लैड टु सी यू—हाऊ डू यू डू ?"

सेठजी ने उनके बढ़े हुए हाथ की ओर देखा, और सोचने लगे, क्या करें !

घबराहट में दोनो हाथ जोड़कर दूर ही से बोले—

"नमस्ते।"

इतने में ख़िदमतगार नाश्ते की ट्रे मेज पर रख गया।

मैडम बोलीं—

"वेल सर ! नाश्ता कीजिए। मुझे माफ़ कीजिए ज़रा एक सेट और खेल लूँ फिर।"

वह चली गईं।

सेठजी की जान में जान आई। धम्म से सोफ़े पर बैठ गए, और बोले—

"बहुत सुंदर!"

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"अरे नहीं यार! बेचारी बीमार रहती है।"

सेठजी ने जवाब दिया—

"इनका जाँघिया—मैं तो उसे देखता ही रह गया!"

प्रोफ़ेसर ने बात बदलने के लिये कहा—

"अच्छा, नाश्ता करो न भाई!"

सेठजी सोफ़े से उठते हुए बोले—

"नहीं, अब इजाज़त दो—बड़ा काम है मुझे। फिर कभी।"

वह उठकर जल्दी से कमरे से बाहर हो गए। प्रोफ़ेसर ने पीछे-पीछे जाकर कहा—

"सुनो तो, रात को खाना यहीं खाना होगा।"

सेठजी की टैक्सी चल पड़ी थी, उन्होंने प्रोफ़ेसर की बात सुनी या नहीं, कौन जाने?

रात को—

भोजनोपरांत जब दंपति एकत्र हुए, प्रोफ़ेसर ने कहा—

"सुनती हो?"

मालती बोली—

"क्या?"

"तुमने आज मेरी कटवा दी!"

"क्या?"

"नाक ! कपड़े बदलकर आतीं मेरे दोस्त से मिलने।"

"नान्सेन्स, मैं दिखावा नहीं करना चाहती।"

प्रोफ़ेसर ने ठंडी साँस लेकर कहा—

"अच्छी बात है।"

"बेशक, बुरा क्या किया ?"

"कुछ नहीं, जाओ, सो रहो।"

मैडम अपने कमरे में चली गईं। प्रोफ़ेसर कुछ सोच रहे थे।

(३)

एक सप्ताह बाद—

इलाहाबाद से मैडम मालती की कुछ सहेलियाँ आई हुई थीं। मैडम ने उनके स्वागत-सत्कार का उचित प्रबंध कर रक्खा था। खाना-पीना, नाच-गाना, सब कुछ हो चुका।

मिस माथुर ने पूछा—

"अच्छा मालती ! यह बतलाओ, तुम्हें प्रोफ़ेसर अच्छे लगते हैं ?"

मालती ने उत्तर दिया—

"हाँ-हाँ, अच्छे न लगते, तो शादी ही क्यों करती ?"

मिस वर्मा से न रहा गया। वह बोलीं—

"शादी करने के भी कारण हुआ करते हैं। सुना है, उनकी उम्र तो ज़्यादा है ?"

मालती ने कहा—

"यह सब मैं नहीं जानती। मैं उनके साथ खुश हूँ, बस।"

मिस माथुर बोलीं—

"बस, यही चाहिए भी। मैंने तो उन्हें देखा नहीं, मगर सुना है कि काफ़ी खूबसूरत हैं।"

मिस वर्मा ने कहा—

"हमारी मालती के मुक़ाबले में क्या जँचते होंगे?"

मिसेज थापर ने अख़बार मेज पर रखते हुए कहा—

"इन बातों से क्या मतलब? हमने अभी तक देखा भी नहीं उन्हें। मालती तो ऐसी होशियार निकली कि चुपचाप शादी कर ली, और हमें खबर भी न दी!"

मिस वर्मा बोलीं—

"किस वक़्त आएँगे कॉलेज से?"

मालती ने उत्तर दिया—

"तीन बज गए, अब आते ही होंगे।"

मिसेज थापर ने कहा—

"तब तो उनसे परिचय हो ही जायगा। हमारी गाड़ी तो पाँच बजे छूटती है।"

"अभी बड़ा वक़्त है।" मालती ने उत्तर दिया।

मिस माथुर ने उठकर रेडिओ खोल दिया।

सब सुनने लगीं—विलायत का प्रोग्राम! थोड़ी देर बाद—बाहर बरामदे में जूतों का खट-खट शब्द हुआ। मालती बोली—

"आ गए वह !"

रेडिओ बंद कर दिया गया। मालती ने दूसरे कमरे में प्रवेश किया।

प्रोफ़ेसर कपड़े उतार रहे थे। मालती ने कहा—

"डियर ! हम लोग तुम्हारा इंतज़ार कर ही रहे थे।"

प्रोफ़ेसर ने चौंककर पूछा—

"हम लोग ? लोग कौन-से ?"

मालती बोली—

"मेरी कुछ सहेलियाँ बाहर से आई हुई हैं। आओ, तुम्हारा परिचय करा दूँ।"

"मेरा परिचय ? फ़ायदा ?"

"उनकी बड़ी इच्छा है तुमसे मिलने की। चलो न डियर !"

प्रोफ़ेसर कुछ सोचने लगे। मालती ने पूछा—

"आते हो ?"

प्रोफ़ेसर के चेहरे पर अचानक मुस्किराहट आई। वह बोले—

"अच्छा, चलो तुम, मैं अभी आया। ज़रा कपड़े बदल लूँ।"

मालती अपनी बैठक में सहेलियों के पास लौट आई।

मिस माथुर ने पूछा—

"आए नहीं ?"

उसने जवाब दिया—

"आ रहे हैं कपड़े बदलकर।"

मिसेज़ थापर बोलीं—

"बड़ी आतुरता है तुम्हें प्रोफ़ेसर साहब से मिलने की? देखना मालती! होशियार रहना इनसे!"

मिस वर्मा ने कहा—

"हर्ज क्या है? बिना देखे ही रीझ गई हो यह बेचारी शायद?"

मिस माथुर ने उत्तर दिया—

"इस काम में तुम ज़्यादा बढ़ी-चढ़ी हो!"

सामने के दरवाज़े का परदा हिलने लगा। मेहमानों की बातचीत बंद हो गई। सबकी आँखें उधर ही उठ गईं।

प्रोफ़ेसर झा ने कमरे में पदार्पण किया!

लेकिन यह क्या—महिलाएँ तो चीख़ पड़ीं, और उठकर खड़ी हो गईं!

और मालती?

वह ग़ुस्से से दाँत पीस रही थी!

प्रोफ़ेसर झा का साढ़े पाँच फ़ीट लंबा शरीर एकदम नंग-धड़ंग, सिर्फ़ लँगोट बँधा हुआ, वक्षःस्थल पर सघन रोमावली! कमरे में सन्नाटा छा गया।

प्रोफ़ेसर झा का स्वर सहसा गूँज उठा—

"क्षमा कीजिएगा देवियो! मैं ज़रा देशी व्यायाम का अभ्यास करने लगा हूँ। आप लोग मेरा परिचय प्राप्त करना

चाहती थीं, यह जानकर मैं व्यायाम की पोशाक में ज्यों-का-त्यों आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। आप लोग...खड़ी क्यों हैं ? बैठ जाइए।"

सब चुप—कोई न बैठा ! प्रोफ़ेसर बोले—

"जान पड़ता है, आप लोग शर्माती हैं। अच्छा, मैं जाता हूँ।"

परदा उठाकर वह अपने कमरे में वापस चले गए। मैडम मालती सिर नीचा किए खड़ी थी। एक-एक करके उसकी सब सहेलियाँ बाहर चली गईं—उनकी ट्रेन छूट रही थी न। किसी ने मालती से बिदा भी नहीं माँगी।

मालती क्या सोच रही थी—कौन जाने ?

* * *

अगले दिन सबेरे-सबेरे—

रसोई-घर से सहसा कपड़े के जलने की दुर्गंधि फैलने लगी।

प्रोफ़ेसर ने जाकर देखा—

मैडम के आधे दर्जन शार्ट्स अँगीठी में सुलगाए जा रहे थे।

उन्होंने अपना लँगोट भी मँगवाकर उसी आग में डाल दिया।

कई दिनों तक पति-पत्नी में बोलचाल बंद रही, फिर सुलह हो गई।

---

(३)

दूध में मक्खी

(१)

बँगले की सालाना रँगाई-पुताई का वक़्त आया—

और मैडम मालती ने ज़िद पकड़ी—होटल में रहेंगे, जब तक बँगला ठीक न हो जाय। प्रोफ़ेसर ने समझाया—

"मुफ़्त का ख़र्च सिर डाल रही हो, सौ-दो सौ की ठुकेगी। यहीं रहो, एक-एक करके कमरे ख़ाली करती जाओ, और रँगाई-पुताई के बाद सामान रख लो। दो-चार रोज़ की तकलीफ़ ही सही।"

श्रीमतीजी चिढ़कर बोलीं—

"क्या ख़ूब, तकलीफ़ ही सही! घर-भर में रँग और चूने की बदबू फैले, और मैं यहीं सड़ा करूँ? तुम्हें क्या, सुबह हुई, कॉलेज चल दिए, आधी रात तक दोस्तों में गपशप—तुम्हारा वक़्त घर में कब कटता है?"

प्रोफ़ेसर मुस्किराकर बोले—

"अफ़सोस है, मैं औरत न हुआ, और तुम मर्द न हुईं!"

देवीजी ग़ुस्से से बोलीं—

"तो मैं इलाहाबाद जाती हूँ—तुम रहो, सड़ा करो यहीं!"

प्रोफ़ेसर ने देखा, मामला बिगड़ रहा है। उन्होंने कहा—

"नाराज़ मत हो। देखो, ज़माना कैसा लग रहा है। मैं तो ख़र्च के ख़याल से कहता था कि होटल में पैसा बरबाद न हो।"

"पैसा—बस, जब देखो, पैसे का ही भीखना! मेरी इच्छा की कुछ भी क़ीमत नहीं ?"

प्रोफ़ेसर सिटपिटाकर बोले—

"यह कौन कहता है ? तुम्हारी इच्छा सब कुछ है डियर !"

"अगर तुम इतना ही समझते होते—"

"बेशक समझता हूँ, सिर्फ़ तुमसे मशविरा कर रहा था। तुम नाराज़ हो गईं।"

"मुझे ऐसा मशविरा पसंद नहीं।"

"अच्छी बात है। कल होटल में कमरे ठीक कर लिए जायँ, यही चाहती हो न ?"

"कल क्यों ? आज ही ठीक कर लो न ?"

"आज ?"

"हाँ-हाँ आज। शाम को घूमने जाओगे ही, रॉयल होटल भी चले जाना।"

"रॉयल होटल ? वहाँ तो बड़ा चार्ज करते हैं ?"

"क्यों, दूसरी जगह कौन सस्ता है ?"

"वलिंगटन में चलो न, कुछ सस्ता ही पड़ेगा।"

"जी नहीं। रॉयल होटल में ही कमरे ठीक होंगे, समझे ?"

"वहाँ राजे-रजवाड़ों की भीड़भाड़ बहुत रहती है। शोर-गुल से घबरा जाओगी। फिर एक बात और है---"

"कह डालिए, जो कुछ कहना हो।"

"वहाँ रहना ठीक नहीं—कम-से-कम हमारे लिये।"

"वजह इसकी ?"

"वजह तुम्हारी समझ में न आएगी।"

"समझने की ज़रूरत भी नहीं मुझे। आप सीधे-सीधे जाकर रॉयल होटल में ही कमरे बुक कर लीजिए। कल हम लोग वहीं उठ चलेंगे।"

प्रोफ़ेसर बेचैनी से कमरे में चहलक़दमी करने लगे। कुछ देर बाद वह बोले—

"मानोगी नहीं तुम ?"

मैडम ने घूरकर उनकी तरफ़ देखा, और जवाब दिया—

"नहीं।"

"अच्छी बात है। मेरा फ़र्ज़ था समझाना।"

"तो समझ लीजिए कि आपका फ़र्ज़ पूरा हो गया !"

"तो आप तैयारी कीजिए। कल नहीं, आज ही रात को हम लोग रॉयल होटल में डेरा जमाएँ।"

श्रीमतीजी उठते हुए बोलीं—

"बेहतर है, शुक्रिया आपका।"

प्रोफ़ेसर कमरे से बाहर चले गए। श्रीमती ने द्वार तक जाकर देखा—प्रोफ़ेसर सड़क पर सिर नीचा किए चले जा रहे थे।

आइने के पास जाकर वह अपना शृंगार करने लगीं। घड़ी उस वक़्त साढ़े तीन बजा रही थी।

(२)

दूसरी मंज़िल पर होटल में नौ नंबर का कमरा प्रोफ़ेसर ने ठीक कर लिया।

रात को ८ बजे अपनी श्रीमतीजी और सामान के साथ जब वह ऊपर जाने लगे, तो किसी मधुर कंठ से निकली हुई आवाज़ सुनाई पड़ी—

"हलो प्रोफ़ेसर साहब !"

प्रोफ़ेसर ने घूमकर देखा—अप-टु-डेट वेश-भूषा से अलंकृत एक युवती जीने की रेलिंग के पास खड़ी हुई मुस्किरा रही थी। युवती काफ़ी सुंदर थी—गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, इकहरा बदन ! मैडम ने भी उसे घूरकर देखा।

दंपति चुपचाप ऊपर पहुँचे। उस युवती ने प्रोफ़ेसर के पास आकर कहा—

"आपने मुझे पहचाना नहीं ?"

प्रोफ़ेसर ने ध्यान से उसे देखते हुए उत्तर दिया—

"माफ़ कीजिएगा, कुछ भूल रहा हूँ।"

युवती ठठाकर हँसी—ख़ूब हँसी ! और मैडम मालती—वह तो उसकी तरफ़ ऐसे देख रही थी, मानो कच्चा ही खा जाने का इरादा कर रही हो।

प्रोफ़ेसर अकचकाकर कभी मैडम की ओर देखते कभी उस युवती की ओर।

मैडम ने प्रोफ़ेसर का हाथ पकड़कर चलने का संकेत किया,

वह आगे बढ़े, इतने में ही वह युवती भी पीछे-पीछे आई, और बोली—

"वाह प्रोफ़ेसर साहब! इतनी जल्दी भूल गए? पिछले साल आप भैया को पढ़ाने आया करते थे—मेरा मतलब है—कृपानाथ को। मैं कृपानाथ की चचेरी......"

प्रोफ़ेसर ने बात काटकर उत्तर दिया—

"ओह! आप हैं मिस कुमुद?"

युवती बोली—

"शुक्रिया! आपको याद तो आई!"

"आप तो—बहुत बड़ी हो गईं, इसी से पहचान नहीं पाया। यहाँ कैसे?"

श्रीमती मालती ने प्रोफ़ेसर के कोट की आस्तीन पकड़कर खींची। युवती बोली—

"हम लोग अब आगरे में रहते हैं। बाबूजी का तबादिला हो गया है न। परसों आई थी यहाँ, कुछ काम था।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा—"ठहरी कहाँ हो?"

"यहीं, इसी होटल में—छ नंबर में। और आप?"

"मैं नौ नंबर में हूँ।"

"तो चलिए अच्छा रहा, खूब बातें हुआ करेंगी। मैं तो अभी चार दिन यहाँ ठहरूँगी।"

मैडम मालती की अधीरता सीमा के पार हो चुकी थी।

वह जल्दी-जल्दी पैर उठाती हुई नौ नंबर के कमरे में चली गई। कुली सामान लेकर साथ-साथ गया।

प्रोफ़ेसर देखते ही रह गए। वह सोचते थे, आज खैर नहीं। किसी तरह कुमुद से पिंड छुड़ाने के लिये उन्होंने कहा—

"अच्छा, अब चलता हूँ, फिर मिलेंगे।"

कुमुद ने उन्हें रोककर कहा—

"वह कौन थीं ? आपकी मिसेज ?"

प्रोफ़ेसर ने उत्तर दिया—

"हाँ।"

"बड़े तेज मिजाज की मालूम होती हैं ?"

प्रोफ़ेसर ने चलते-चलते कहा—

"जी नहीं। बात यह है मिस कुमुद ! हम लोग बहुत थक गए हैं।"

कुमुद भी आगे बढ़ती हुई बोली—

"मगर आप तो एजर्टन रोड पर कॉलेज के बँगले में रहते थे ?"

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"हाँ, वहीं अब भी रहता हूँ, मगर बँगले की सालाना रँगाई-पुताई हो रही थी, इसलिये होटल में चला आया दो-चार दिन के लिये।"

"अच्छा तो है। कुछ रोज जगह की तब्दीली भी चाहिए। एक ही जगह रहते-रहते जी ऊबने लगता है।"

तब तक दोनो छ नंबर के कमरे के पास आ गए। कुमुद ने हाथ से इशारा करके बताया—

"प्रोफ़ेसर साहब ! यही है मेरा कमरा।"

"अच्छा, तो आप पड़ोस में ही हैं। ठीक है, मैं फिर आऊँगा।"

"अरे, चाय पीते जाइए कम-से-कम।" कुमुद बोली। कुछ जवाब न देते हुए प्रोफ़ेसर ने तब तक लपककर अपने कमरे का दरवाज़ा खोल दिया था, और भीतर जा चुके थे।

(३)

प्रोफ़ेसर साहब ने होटल के कमरे में प्रवेश करते ही देखा—

सूटकेस खुले हुए—कपड़े इधर-उधर बिखरे हुए—टाइयाँ, रूमाल इधर-उधर अस्त-व्यस्त और मैडम—

..मैडम मेज़ पर सिर रक्खे कुर्सी पर बैठी हुई थीं !

यह दृश्य देखते ही प्रोफ़ेसर की सट्टी-पिट्टी भूल गई। वह घबरा गए—उन्हें बचपन में पढ़ी हुई रामायण की कैकेयी के कोप-भवन का दृश्य स्मरण हो आया।

वह सिहर उठे—कारण वह स्वयं जानते ही थे।

थोड़ी देर तक वह मूर्तिवत् जहाँ-के-तहाँ खड़े रहे, फिर बड़ा साहस करके आगे बढ़े—पैर दबाते हुए, जिसमें जूतों की आवाज़ न सुनाई पड़े।

कुर्सी के पास पहुँचकर उन्होंने श्रीमतीजी के कंधे पर धीरे से हाथ रक्खा—

श्रीमती तो टस से मस न होती थीं !

धीरज बाँधकर प्रोफ़ेसर ने कहा—

"डियर ! कैसा जी है ?"

जवाब नदारद ! सिर्फ़ मैडम के नथुनों से ज़ोर-ज़ोर साँस लेने का आभास होता था। प्रोफ़ेसर ने घूमकर सिर पर हाथ रक्खा, और बोले—

"रानी ! क्या सिर दर्द करता है ? यहाँ क्यों बैठी हो, पलंग पर लेट रहो। क्या कहूँ। तुम्हारी तबियत ठीक नहीं रहती !"

प्रोफ़ेसर ने एक ठंडी साँस ली।

देवीजी ऐसी चुप थीं, मानो इस दुनिया में हैं ही नहीं।

प्रोफ़ेसर ने देखा—उनका चेहरा तमतमाया हुआ था। वह काच के एक गिलास में पानी लेकर पहुँचे, और बोले—

"उठो डियर ! मुँह धो डालो—बड़ा गर्म मालूम होता है !"

मैडम के सिर से खिसककर कंधे पर आई हुई साड़ी को हाथ लगाते ही मैडम का हाथ ज़ोर से घूमा, और काच का गिलास झनझनाता हुआ दूर फ़र्श पर गिरा, और टुकड़े-टुकड़े हो गया। साथ ही वह उठकर खड़ी हो गईं, और कड़ककर प्रोफ़ेसर से बोलीं—

"बस, बहुत हो चुका—अपनी हमदर्दी अपने ही पास रखिए।"

प्रोफ़ेसर कुछ देर खामोश रहे, फिर धीरे से उन्होंने पूछा—

"क्यों, हुआ क्या ?"

"आपका सिर और मेरा सिर !"

प्रोफ़ेसर ने पीठ फेरकर उत्तर दिया—

"मेरा सिर तो ठीक है। तुम्हारे सिर में शायद दर्द हो रहा होगा थकावट से। अटैची खोलकर 'अमृतांजन' निकालो, लगा लो, अभी दर्द जाता रहेगा।"

श्रीमतीजी फिर कुर्सी पर बैठ गईं। प्रोफ़ेसर ने कनखियों से देखा, फिर धीरे-धीरे पास आकर बोले—

"'कैफ़ियास्पिरिन' ले आऊँ ?"

देवीजी गरज उठीं—

"आप ही खा लीजिए, या अपनी उस छोकरी को खिला दीजिए !"

प्रोफ़ेसर ने अनजान की भाँति पूछा—

"छोकरी कौन-सी ?"

"वही-वही, आपकी परिचिता, जिससे घंटे-भर तक बातें होती रहीं। प्रोफ़ेसर ! तुम मुझे चकमा नहीं दे सकते। मैं सब समझती हूँ।"

"क्या समझती हो ? भला, मैं भी तो सुनूँ। मिस कुमुद

का भाई मुझसे फ़िलॉसफ़ी पढ़ता था, इसी नाते वह भी मुझसे परिचित है। इसमें तो कोई बात नहीं।"

"उससे बातें करना ज़्यादा ज़रूरी था तुम्हारे लिये, और मेरे आराम का ख़याल रखना? मैं हूँ ही कौन!"

प्रोफ़ेसर ने बड़े कोमल स्वर में कहा—

"डियर! इतनी-सी बात में रूठ जाना तो ठीक नहीं। तुम जो कहो, वही करूँ, तबियत ठीक न हो, तो डॉक्टर बोस को टेलीफ़ोन कर दूँ।"

"हुँ: मेरी तबियत—यह ज़बानी जमा-ख़र्च करना ख़ूब आता है तुम्हें प्रोफ़ेसर! मगर मैं समझ रही हूँ कि तुमको अब मेरी परवा नहीं रही।"

"ऐसा समझने का कारण?"

"कारण भी रोज़ाना सामने आते रहते हैं।"

श्रीमतीजी उठीं, और पलँग पर जाकर लेट रहीं। प्रोफ़ेसर कमरे का सामान ठीक से सँभालकर रखने लगे। मैडम का टेंपरेचर उतरा नहीं। प्रोफ़ेसर घूमने निकल गए।

एक घंटे बाद वापस लौटे, तो उनके हाथ में साड़ी का एक बक्स था।

उसी के बल पर संधि-प्रस्ताव करने का वह निश्चय कर चुके थे। फलतः उन्हें कामयाबी भी मिली—नई साड़ी पाकर

मेडम शाम की घटना भूल-सी गईं। जाहिरा तो यही जान पड़ता था, उनके मन की कौन जाने ?

(४)

दूसरे दिन—

मालतीदेवी नई साड़ी पहने हुए कुछ प्रसन्न दिखाई देती थीं।

होटल के कमरे में इधर-उधर घूम-फिरकर वह बोलीं—

"जगह तो काफी अच्छी है प्रोफ़ेसर! हम लोग बड़े मजे में रहेंगे यहाँ कुछ रोज—कम-से-कम पंद्रह दिन। क्यों न ?"

अपने गले की टाई की गाँठ सँभालते हुए प्रोफ़ेसर ने उत्तर दिया—

"हाँ-हाँ, मुझे कोई आपत्ति नहीं। तुम्हें यहाँ अच्छा लगता है, यह बड़ी खुशी की बात है।"

परंतु मन-ही-मन वह सोच रहे थे—पंद्रह दिन ? सात रुपए के हिसाब से होटल का किराया १०५) और खाने का बिल अलग से! बाप रे बाप! आधी तनख्वाह तो यों ही साफ़ हो जायगी श्रीमतीजी की कृपा से! प्रोफ़ेसर घबरा उठे। बोले—

"अच्छा, मैं ज़रा घूम-फिरकर देखूँ होटल की बहार, अभी आता हूँ।"

जवाब सुने बिना ही प्रोफ़ेसर द्वार खोलकर बाहर चले गए।

उनके जाने के बाद मैडम ने सोचा, कपड़े सँभालकर बक्सों में रख दिए जायँ। फिर कमरे की सफ़ाई की बारी आई, उसके बाद साड़ी बदलकर उस पर बिजली का लोहा फेरा गया, और वह बक्स में रख दी गई। फिर वह स्नान करने गईं। नहा-धोकर जब बाहर आईं, तो देखा, बड़ा बक्स कुछ बेतरीक़े किनारे पड़ा है। उसे किनारे से खिसका-कर कोने में लगा देने का ध्यान आया। मगर बक्स तो बड़ा भारी है! मैडम ने अपनी सारी ताक़त लगा दी, मगर वह अपनी जगह से हिलने का नाम ही नहीं लेता!

अगर प्रोफ़ेसर होते, तो यह काम आसानी से हो जाता। मालती ने द्वार खोलकर पुकारा—

"हलो प्रोफ़ेसर!"

कोई उत्तर न मिला। बरामदे में दूर तक प्रोफ़ेसर की परछाँहीं भी दृष्टि न पड़ी।

देवीजी ने आतुरता से फिर आवाज़ दी—

"प्रोफ़ेसर! प्रोफ़ेसर! प्रोफ़े...सर!"

प्रोफ़ेसर का कहाँ पता! वह वहाँ हों, तो जवाब दें।

श्रीमतीजी बड़बड़ा उठीं—"जान पड़ता है, बहरे हो गए प्रोफ़ेसर!"

तड़ाक से किवाड़ बंद करके वह कमरे में लौट आईं। मारे क्रोध के फूलदान से फूलों का गुलदस्ता निकालकर खिड़की के बाहर फेक दिया। पलँग के तकिए पैताने उछाल दिए।

इसके बाद कमरे में तेजी से टहलने लगीं। वह सोच रही थीं—कहाँ गए प्रोफ़ेसर ? कहीं उस छ नंबर के कमरेवाली छोकरी के पास न बैठे हों ? ज़रूर वहीं होंगे !

इसका ध्यान आते ही देवीजी किवाड़ खोलकर सपाटे से बाहर निकल गईं।

बरामदे में आकर उन्होंने फिर आवाज़ दी—

"प्रोफ़ेसर ! प्रोफ़ेसर !!"

अपनी आवाज़ की प्रतिध्वनि के अतिरिक्त और उन्हें कोई उत्तर न मिला।

वह लपकती हुई छ नंबर के कमरे के द्वार पर जा खड़ी हुईं, और ज़ोर से थपकी देकर पुकारा—

"प्रोफ़ेसर !"

लेकिन यह क्या—बाहर तो ताला लटक रहा है ! वह सोचने लगीं—

ओफ़् ! तब तो जान पड़ता है, प्रोफ़ेसर इस छोकरी को लेकर कहीं सैर-सपाटे को निकल गए ! मुझसे कहते थे—ज़रा होटल की बहार देख आऊँ। यह बहार देखी जा रही है ! सरासर धोखा देते हैं मुझे। मगर आने दो, मैं भी समझ लूँगी।

श्रीमतीजी धड़धड़ाती हुई ज़ीने से नीचे उतर गईं। मैनेजर के कमरे में झाँककर देखा—वहाँ भी प्रोफ़ेसर का पता नहीं। कुछ और आगे बढ़ीं। होटल का ड्राइंग-रूम दिखाई दिया। वहाँ केवल दो-चार व्यक्ति बैठे थे। लेकिन—

यह कौन है ? श्रीमती ने झाँककर ध्यान से देखा—

एक कोने में सोफ़े पर प्रोफ़ेसर और एक भद्र महिला विराजमान—दोनों में खूब घुल-घुलकर बातें हो रही थीं !

मालती ने अपनी आँखें मल-मलकर देखा—यह छः नंबर-वाली छोकरी तो है नहीं, कोई और ही स्त्री है—नई आई होगी। मगर प्रोफ़ेसर की यह आदत कैसी ? हरएक स्त्री से परिचय कर लेना क्या अच्छी बात है ?

वह धड़धड़ाती हुई भीतर पहुँचकर बोलीं—

"डियर ! कब से पुकार रही हूँ तुम्हें, सुनते ही नहीं !"

प्रोफ़ेसर उठ खड़े हुए, और बोले—

"माफ़ करना ज़रा। हाँ, आप लोगों का परिचय करा दूँ—आप हैं मिस नरीमैन, मेरे दोस्त की लड़की, और आप हैं मिसेज़ मालती—आई मीन—मिसेज़ झा !"

मिस नरीमैन के आगे बढ़े हुए हाथ को शर्मी शर्मा मालती ने अपने हाथ में लेकर अभिवादन स्वीकार किया। इसके बाद मुँह फिराकर बोलीं—

"चलो प्रोफ़ेसर ! थोड़ा काम करना है।"

प्रोफ़ेसर ने मिस नरीमैन से कहा—

"माफ़ कीजिएगा, मैं फिर आपसे मिलूँगा। थोड़ा बिज़ी हूँ !"

"कोई बात नहीं प्रोफ़ेसर ! आप जा सकते हैं।" मिस नरीमैन ने उत्तर दिया।

मैडम आगे-आगे और प्रोफ़ेसर पीछे—ज़ीने से चढ़कर अपने कमरे में पहुँचे। द्वार बंद करके श्रीमतीजी ने पूछा—

"क्या इस चुड़ैल के भाई को भी आप फ़िलॉसफी पढ़ाते थे?"

प्रोफ़ेसर ने उत्तर दिया—

"नहीं तो, मेरे एक दोस्त आगरे में डिप्टी कलेक्टर हैं, यह उन्हीं की लड़की है।"

"यहाँ क्यों आई थी?"

"मैं क्या जानूँ, मुझसे तो अचानक भेंट हो गई।"

"अचानक भेंट हो गई? तुम्हें अपनी हरकतों पर शर्म आनी चाहिए प्रोफ़ेसर!"

"शर्म काहे की?"

"बस, चुप रहो। सब समझती हूँ। तुम्हारी ये आदतें अच्छी नहीं!"

प्रोफ़ेसर ने कुछ उत्तर न दिया। मेज़ पर से अख़बार उठाकर खिड़की के पास जा पहुँचे, और वहीं कुर्सी पर बैठकर पढ़ने लगे।

मैडम थोड़ी देर तक आप-ही-आप साँप की तरह फुफकारती रहीं, फिर चुप हो गईं।

मगर उनको अब प्रोफ़ेसर के व्यवहार पर संदेह रहने लगा।

और, संदेह के कारण भी मानो प्रस्तुत होने के लिये आतुर रहते थे !

(५)

दंपति को होटल में रहते हुए चार दिन बीत चुके थे।

इन चार ही दिनों में मालती को यह विश्वास हो गया था कि उसके पतिदेव अर्थात् प्रोफ़ेसर झा आवश्यकता से अधिक मिलनसार तबियत रखते हैं।

मिस कुमुद से परिचय और मिस नरीमैन से गपशप की घटनाएँ तो हो ही चुकी थीं। इनके अतिरिक्त और भी वैसी कई घटनाएँ घटित हुईं। उदाहरण के लिये—एक दिन प्रोफ़ेसर होटल के मैनेजर की छोटी बहन को अँगरेजी का सबक़ याद कराते पकड़े गए, जिस समय मालती अपनी मा को पत्र लिखने में लगी थी। दूसरी बार वह नंबर १५ में ठहरी हुई मिसेज शाह की कटी उँगली में पट्टी बाँधते दिखाई दिए, जब कि मालती ने उनको संतरे लाने के लिये बाजार भेजा था। तीसरी बार सिनेमा में एक लेडी का गिरा हुआ रूमाल उठाकर उसे वापस करते और मुस्किराते हुए वह धरे गए। मालती की आँखों ने सब कुछ देखा था, और वह मन-ही-मन कुढ़ती जा रही थी। वह सोचती थी—मिलनसारी का स्वभाव वैसे तो बुरा नहीं, परंतु प्रोफ़ेसर तो सीमा से आगे बढ़ जाते हैं।

अंत में इस नाटक की यवनिका गिरने का समय आ गया।

रात को क़रीब बारह बजा होगा—अँगरेज़ी का एक उपन्यास समाप्त करके जैसे ही मालतीदेवी ने बिस्तर पर क़दम रक्खा, वैसे ही दिल की धड़कनवाला उनका पुराना मर्ज़ ज़ोर पकड़ गया। वह चीख़ने-चिल्लाने लगीं। प्रोफ़ेसर ने 'स्मेलिंग-साल्ट' सुँघाया, 'लेनीमिंट' की मालिश की, मगर दर्द में कमी न हुई। श्रीमतीजी बोलीं—

"इससे कुछ न होगा। जाओ डियर! कहीं से पाव-भर गरम दूध ले आओ।"

प्रोफ़ेसर ने पूछा—

"दूध? इतनी रात को दूध कहाँ मिलेगा डियर?"

प्रोफ़ेसर की आँखों में नींद भरी हुई थी। मैडम ने जवाब दिया—

"तुम्हारे लिये इतनी रात हो गई! होटल के बाहर निकलो तो, कहीं-न-कहीं मिल ही जायगा।"

"अरे, अब तक तो बाज़ार की दूकानें भी बंद हो चुकी होंगी। कहो, तो किसी गाय को ही पकड़कर दुह लाऊँ?"

"यह सब मैं नहीं जानती। मुझे दूध चाहिए। उसी से मेरी तबियत ठीक हो जाती है।"

"अच्छी बात है, जाता हूँ।"

प्रोफ़ेसर ने काँच का गिलास उठाया, जूते पहने, और पत्नी की ओर देखकर बोले—

"अब तो तुम्हारी हालत कुछ ठीक होती जान पड़ती है?"

श्रीमतीजी उबल पड़ीं—

"उहुँ: दूध ले आओ।"

"सचमुच ही जाना पड़ेगा ?"

"हूँ, जाओ।"

लाचारी में प्रोफ़ेसर साहब द्वार खोलकर बाहर निकल गए। मन में सोच रहे थे कि श्रीमतीजी का मर्ज भी उन्हीं की तरह ज़िद्दी है—कैसे बुरे वक्त, जोर पकड़ता है। दिन होता, तो बात दूसरी थी, मगर आधी रात को—ईश्वर ही मालिक है !

और देवीजी उधर यह सोच रही थीं—बाजार तो होटल के नीचे ही है—अभी दूध लेकर प्रोफ़ेसर लौट आएँगे।

पाँच, दस, पंद्रह, बीस मिनट बीत गए !

सोचते-ही-सोचते श्रीमती का मर्ज रफ़ूचक्कर हो गया। उन्हें चिंता होने लगी—बात क्या है ? क्या प्रोफ़ेसर को दूध बाजार-भर में नहीं मिला ?

क्या वह सचमुच किसी घोसी के घर जाकर गाय दुहने लगे ! मगर इतनी देर में तो पाव-भर दूध कभी का दुह चुके होंगे ? मालूम नहीं, कहाँ चले गए ? रास्ते में मिर्गी तो नहीं आ गई ? किसी मोटर से तो नहीं लड़ गए ? क्या जानें, मर गए हों ? मगर बीमे की क़िस्त तो बराबर देते ही हैं ! परवाह नहीं। शायद किसी डेग़री में चले गए हों दूध लेने।

मालती की घबराहट बढ़ने लगी—वह क्या करे ?

अच्छा, अब तो उठना ही पड़ेगा प्रोफ़ेसर का पता लगाने के लिये। देखें, वह दूध लाए या नहीं। उसका मर्ज़ तो सोच-ही-सोच में काफ़ूर हो गया।

उसने उठकर अपने कपड़े ठीक किए, चप्पल पहने, और बाहर निकली।

बरामदे में सन्नाटा छाया हुआ था। इधर-उधर कोई नहीं।

मालती ने सोचा, मैनेजर के दफ़्तर में जाकर पुलिस को टेलीफ़ोन करूँ। वह ज़ीने के पास पहुँची। उधर से होटल का एक खानसामा ऊपर आ रहा था।

मैडम ने पूछा—

"ब्वाय! तुमने नौ नंबरवाले साहब को इधर देखा है?"

खानसामा बोला—

"जी हुज़ूर! साहब तो छ नंबर के कमरे में गए थे, बड़ी देर हुई। मैं उस वक्त यहीं था।"

"छ नंबर में? वहाँ क्या कर रहे हैं?"

"हुज़ूर! मैं क्या जानूँ।"

खानसामा चला गया। मैडम ने सोचा—यह बात है। प्रोफ़ेसर ने मिस कुमुद के कमरे में अड्डा जमा रक्खा है! अच्छा।

वह बेतहाशा दौड़ती हुई छ नंबर के कमरे के द्वार पर पहुँची। धक्का दिया, द्वार खुल गया। भीतरी कमरे के द्वार पर मिस कुमुद और प्रोफ़ेसर खड़े हुए बातें कर रहे थे!

मैडम ने इस अवसर पर क्या-क्या कहा, उसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। प्रोफ़ेसर के मुँह से एक शब्द भी न निकला।

* * *

मगर कोई ख़ास बात न थी।

प्रोफ़ेसर का कहना था—मैं बाज़ार से दूध लेकर लौटा, तो उजाले में देखा कि उसमें मक्खी पड़ गई थी, और मक्खी में ज़हर होता है, इसलिये लाचार होकर सारा दूध मुझे फेंक देना पड़ा। मैं अपने कमरे में वापस आ रहा था कि मिस कुमुद ने मुझे बुलाकर अपने भीतर के कमरे की सिटकनी ठीक कर देने को कहा। इतने से काम के लिये मुझसे इनकार करते न बना। और, उसके बाद........उसके बाद कुछ भी नहीं। सिटकनी ठीक हो गई थी।

उस रात को मैडम को दूध न मिला!

दंपति के होटल-प्रवास की अवधि दूसरे ही दिन प्रातःकाल समाप्त हो गई।

मैडम ने निश्चय कर लिया कि अपने बँगले में ही रहना ठीक है। रंग और चूने की बदबू भले ही उनको नागवार-ख़ातिर होती रही!

होटल से उनका जी भर गया था।

वहाँ दूध में मक्खी पड़ जाती है।

---

(४)

अँधेरा-उजाला

(१)

कुछ महीने बाद—

अचानक मकान-मालिक का नोटिस मिलने पर प्रोफ़ेसर को बँगला खाली कर देना पड़ा। बड़ी मुश्किल से तलाश करते-करते एक छोटी-सी कॉटेज मिली, जिसमें केवल तीन ही कमरे थे। रहने को तकलीफ़ ज़रूर थी, मगर प्रोफ़ेसर ने उसे ही ग़नीमत समझा। श्रीमतीजी भी कुछ न बोलीं, क्योंकि परिस्थिति ही ऐसी थी।

अस्तु। नए बँगले में आ जाने के बाद पलँग की कठिनाई उपस्थित हुई; क्योंकि सामान ठेले पर लादते समय प्रोफ़ेसर-वाला पलँग गिरकर टूट गया था। मरम्मत के बाद भी वह ठीक न हो सका—टेढ़ा ही रहा।

मैडम का पलँग काफ़ी बड़ा और आरामदेह अवश्य था। प्रोफ़ेसर की आँखें उसी पर लगी हुई थीं। संभव है, समस्या सुलझ भी जाती, परंतु सोने का कमरा तो एक ही था। बँगले में इसकी मुसीबत और उठ खड़ी हुई।

दुनिया में मुसीबतें तो हैं ही, फिर गृहस्थी में उनका क्या पूछना !

बात यह हुई कि मैडम को रात में देर तक जागना पसंद था। वह पलँग पर पड़े-पड़े बारह-एक बजे रात तक अँगरेज़ी

के उपन्यास और पत्रिकाएँ पढ़ा करतीं, तब कहीं जाकर उन्हें नींद आती। उनकी आदत ही ऐसी पड़ गई थी। और, प्रोफ़ेसर बेचारे—

इस नए बँगले में आकर तो बुरे फँसे, क्योंकि दिन-भर कॉलेज में विद्यार्थियों के साथ मग़ज़-पच्ची करने के बाद वह थके-माँदे शाम को घर आते, भोजन करते, घूमने जाते, फिर वापस आकर पलँग पर जा लेटते, तो बिजली की तेज़ रोशनी में उनकी नींद हराम हो जाती। पुराने बँगले में कमरा अलग होने के कारण इस कठिनाई से वह बचे हुए थे, अब यहाँ क्या करें? मैडम को रोशनी ज़रूर चाहिए उपन्यास पढ़ने के लिये रात को—उनकी आदत छूट नहीं सकती!

पूरी दो रातें प्रोफ़ेसर नींद-भर न सो सके, तब तीसरे दिन उन्होंने श्रीमतीजी से कहा—

"रानी! एक बात कहूँ?"

पलँग पर लेटी हुई श्रीमती ने पुस्तक के पृष्ठ से नज़र न हटाते हुए उत्तर दिया—"हूँ-हूँ।"

"देखो डियर! दया करके बत्ती बुझा दो। मुझे उजाले में ज़रा भी नींद नहीं आती। आज दो रातों से नैश जागरण कर रहा हूँ।"

"कैसे बुझा दूँ, मैं पढ़ूँगी अभी थोड़ी देर—लेटे रहो प्रोफ़ेसर! नींद आ ही जायगी, और कुछ दिनों में उजाले में सोने का अभ्यास हो ही जायगा।"

"मगर मेरे ख़याल से तुम्हारे उपन्यास पढ़ने की अपेक्षा

मेरा सोना ज्यादा जरूरी है डियर! स्वास्थ्य के लिये सोना आवश्यक होता है, पढ़ना तो केवल मनोविनोद-मात्र है।"

"मगर वह मनोविनोद ही मेरे लिये ज़रूरी है प्रोफ़ेसर!"

"मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि तुम्हें ऐसा मनोविनोद छोड़ना पड़ेगा।"

"मुझे अफ़सोस है, मैं उसे छोड़ने को तैयार नहीं हूँ जनाब!"

"तुम्हें मेरे आराम का जरा भी ख़याल नहीं?"

"और, तुम्हें भी मेरी मर्जी का क़तई खयाल नहीं प्रोफ़ेसर?"

"अच्छा।"

श्रीमतीजी पुस्तक पढ़ने में पुनः लीन हो गईं।

दो मिनट बाद प्रोफ़ेसर बिछौने से उठे, और कोने में जाकर बिजली का स्विच बंद कर दिया।

बत्ती बुझ गई। कमरे में अँधेरा छा गया। तब—

तब प्रोफ़ेसर पुनः पलँग पर आ लेटे, और सोने की ठानी बड़े इतमीनान से!

(२)

मैडम चुपचाप पड़ी रहीं, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

पंद्रह मिनट बीते—बीस—आधा घंटा—पौन—पूरा एक घंटा बीत गया।

तब वह उठीं, धीरे से चप्पल पहनी, और कोने में जाकर

स्विच खोल दिया। कमरा पूर्ववत् बिजली के प्रकाश से जगमगा उठा। पुनः उपन्यास पढ़ा जाने लगा।

श्रीमतीजी मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थीं कि प्रोफ़ेसर सो गए, और मुझे मज़े से पढ़ने को मिला। जो उपन्यास वह पढ़ रही थीं, वह बड़ा ही मनोरंजक था, और किसी फ्रेंच लेखक की कृति का अँगरेज़ी-अनुवाद था। उन्हें घटना-प्रसंग में बड़ा आनंद आ रहा था।

उपन्यास में वर्णन किया गया था कि अल्फ़ान्सो-नामक खानसामा किस प्रकार अपने मालिक की प्रेम-पात्रियों को बँगले के पीछे के द्वार से भीतर पहुँचाता है, और नौकरानी निनी कैसे अपनी मालकिन के प्रेम-पात्रों को सामने के द्वार से भीतर बुला लाती है। और तब गृह-स्वामी किस प्रकार अपनी पत्नी को एक अपरिचित युवक के बाहु-पा......

"किट्"—स्विच के गिरने का शब्द और कमरे में अँधेरा!

दो-चार मिनट तक सन्नाटा रहा, फिर—

"किट्"—बिजली की बत्ती जल उठी, और मैडम पलँग पर लेटकर पुनः उपन्यास पढ़ने लगीं। उनका मन उसी में लगा हुआ था।

पाँच, दस, पंद्रह, बीस मिनट बीत गए। इतने में फिर आवाज़ आई—

"किट्।"—कमरे में पुनः अंधकार छा गया।

देवीजी का पढ़ना बंद !

सचमुच प्रोफ़ेसर ने चुपचाप बिछौने से उठकर इस बार बिजली का स्विच बंद करने के बजाय बल्ब ही उतार लिया था !

अब तो मैडम अगर उठकर स्विच खोल भी दें, तो बेकार ही होगा—बिना बल्ब के रोशनी कहाँ ? प्रोफ़ेसर ने बल्ब उतारकर रक्खा कहाँ—कहीं नहीं—अपनी जेब में, बिछौने पर ! जिसमें मैडम उसे पा न सकें।

सचमुच प्रोफ़ेसर को दूर की सूझी।

झुँझलाई हुई बिल्ली की तरह वह पलँग पर करवटें बदलने लगीं।

कोई युक्ति उनकी समझ में न आती थी। आज तो प्रोफ़ेसर बाज़ी मार ले गए !

अगली रात को भी यही धमा-चौकड़ी मची रही।

जब श्रीमती मालती ने अच्छी तरह समझ लिया कि प्रोफ़ेसर अपनी मनमानी करने पर तुले हुए हैं, तो उन्होंने भी अपनी ज़िद पूरी करने की युक्ति सोचना आरंभ कर दी। पराजय स्वीकार करना तो मैडम जानती ही न थीं।

(३)

रात हुई, और दंपति सोने चले गए। मैडम पहले से ही जाकर लेट रही थीं।

प्रोफ़ेसर ने कमरे में पहुँचकर देखा—

श्रीमती तो सचमुच सोती हुई जान पड़ती थीं। उन्होंने फिर भी आज़माना ठीक समझा, और बोले—

"डियर! आज का खेल तो वाक़ई अच्छा था—था न? यह उस फ़िल्म के विषय में था, जो वे लोग शाम को देखने गए थे।"

प्रोफ़ेसर की बात का कोई उत्तर न मिला। उन्होंने फिर पूछा—

"और रानी! आज खीर भी बड़ी स्वादिष्ट बनी थी। क्या ख़याल है तुम्हारा?"

फिर भी जवाब नदारद! प्रोफ़ेसर सवाल-पर-सवाल करते रहे, और उत्तर न पाकर उन्हें आशंका हुई कि बात क्या है? वह सोचने लगे—

क्या अचानक ही उनके विधुर होने का समय आ गया? विवाह के उपरांत इतने शीघ्र? कैसे दुःख की बात है, यदि ऐसा हुआ!

अब इतनी उमर में कौन लड़की उनसे विवाह करने को राज़ी होगी?

प्रोफ़ेसर का दिल धड़कने लगा। घबराहट में पास जाकर, उन्होंने पत्नी का कंधा पकड़कर ज़ोर से हिलाते हुए पूछा—

"रानी! कैसा जी है तुम्हारा?"

"उहुँः, सोने भी दो।" श्रीमतीजी बोलीं। उनकी आँखें बंद ही रहीं।

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"डियर ! मुझसे बोलतीं भी नहीं तुम ? बात क्या है ? इतनी जल्दी सो गईं ?"

"उहुँः, नींद लग रही है । तुम भी सो जाओ ।" मैडम ने उत्तर दिया ।

"मगर तुमको ऐसी गहरी नींद क्यों आ रही है ? मुझे तो डर लगता है डियर !"

प्रोफ़ेसर ने फिर देवीजी को हिलाया-डुलाया । वह बिगड़कर बोलीं -

"क्या मतलब है तुम्हारा, जो नाक में दम कर रक्खा है ? सोने भी नहीं देते ?"

पति महोदय भिटपिटा गए । धीरे से बोले —

"नहीं-नहीं, इस वक़्त कोई मतलब नहीं है मेरा डियर ! तुम्हें ऐसी गहरी नींद में सोते देखकर मुझे आशंका हुई कि क्या बात है—कैसा जी है तुम्हारा डियर !"

"उहुँः, तुम तो बाल की खाल निकालते हो प्रोफ़ेसर ! देखो, मैंने डॉक्टर बोस की नींद लानेवाली दवा की एक ख़ुराक पी ली है, जिसमें मुझे पढ़ने की ज़रूरत न पड़े, और मैं सो जाऊँ । बस, इतनी-सी बात है, अतएव मुझे कृपा करके सोने दो । नहीं मानोगे, तो..."

बात काटकर प्रोफ़ेसर ने जवाब दिया—

"ठीक है, ठीक है; सो जाओ तुम । मैं तुम्हें न छेड़ूँगा अब । अच्छी तरह सोना, मधुर-मधुर सपने देखना मेरी रानी !"

वह थपकियाँ देकर अपनी सहधर्मिणी को सुलाने की चेष्टा करने लगे।

सचमुच उसके आराम का उन्हें बड़ा ख़याल था, और ख़याल होना ही चाहिए।

ज़रा देर में श्रीमतीजी ख़र्राटे लेने लगीं, नींद मानो उस समय उनकी अनुचरी हो रही थी।

प्रोफ़ेसर कोने की ओर बढ़े, स्विच बंद कर दिया।

बिजली की बत्ती बुझ गई, कमरे में अँधेरा हो गया, और बड़े इतमीनान से प्रोफ़ेसर बिछौने पर जा लेटे। थोड़ी ही देर में उन्हें नींद आ गई।

(४)

लगभग पंद्रह मिनट बाद—

मैडम ने जब इस बात का पूरे तौर से पता लगा लिया कि पतिदेव आराम से नींद में ख़र्राटे ले रहे हैं, तब उन्होंने बिस्तर के नीचे से एक सात सेलवाला लंबा टार्च निकाला। उसी दिन वह टार्च ख़रीद लाई थीं, और उसकी तेज रोशनी में नियमित नैश पाठ की व्यवस्था कर चुकी थीं।

अब तो प्रोफ़ेसर को कोई भी असुविधा न होगी, और न बत्ती जलाने की ही आवश्यकता पड़ेगी। मजे से टार्च के उजाले में उपन्यास पढ़ा जा सकेगा। मगर उस दिन तो उपन्यास के बजाय श्रीमतीजी कोई अँगरेजी की पत्रिका ले आई थीं—उसी में उनका ध्यान लगा हुआ था।

पत्रिका भाँति-भाँति के चित्रों से सुसज्जित थी, और उसमें पढ़ने की काफ़ी चटपटी सामग्री थी।

पत्रिका का नाम था—'स्वप्न-लोक'।

बस, श्रीमतीजी उसे पढ़ने में जुट गईं। उसमें हास्य और व्यंग्य के चुटकुले पढ़कर वह बार-बार खिलखिला उठती थीं। उन्हें बड़ा आनंद आ रहा था। कभी-कभी उनकी हँसी जोर पकड़ जाती थी। बड़ी देर तक हँसने, खिलखिलाने और पढ़ने का क्रम चलता रहा।

सहसा कमरे के अंधकार में प्रोफ़ेसर का स्वर गूँज उठा—

"डियर! मेरा ख़याल है, तुमने नींद लानेवाली दवा पी थी?"

"हाँ-हाँ, पी होगी मैंने। मगर पी या नहीं पी, तुम्हें क्या मतलब? बिना कुछ देर तक पढ़े, मुझे नींद आती ही नहीं।" देवीजी ने उत्तर दिया।

कुहनी के सहारे कुछ उठकर प्रोफ़ेसर ने पत्रिका पर दृष्टि डाली, और पूछा—

"कौन-सी पत्रिका है? 'मॉडर्न रिव्यू' या 'ओरियंट'?"

"उहुँः, उनमें क्या रक्खा है।"

"फिर कौन-सी है?"

"इँगलिश जर्नल है—'ड्रीमलैंड'—स्वप्न-लोक। कैसा अच्छा नाम है प्रोफ़ेसर!"

"किस विषय का पत्र है डियर! जो तुम इसके पढ़ने में इतनी भूली हुई हो?"

"विषय? वही......ही-ही-ही!"

मेडम खिलखिला उठीं। खूब ज़ोर से हँसीं। प्रोफ़ेसर ने पूछा—

"वही का क्या अर्थ है?"

"इसमें ऐसी अच्छी-अच्छी तसवीरें हैं कि तुम देखो, तो फड़क उठो। और, कार्टून तो ग़ज़ब ढा रहे हैं डियर!"

प्रोफ़ेसर की उत्सुकता बढ़ने लगी। वह बोले—

"मैं क्या जानूँ कि तुम इसे पढ़ रही थीं। अगर तुम पढ़ती ही हो, तो मेरा फ़र्ज़ है कि मैं भी इसे देखूँ।"

मेडम के होठों पर शरारत से भरी हुई मुस्किराहट आई। वह बोलीं—

"तुम भी क्या कहोगे प्रोफ़ेसर! लो, देख लो एक नज़र जल्दी से। मेरे पास इसके दो अंक हैं—एक पिछले महीने का भी है। दोनो सचित्र हैं, मगर इतनी धीमी रोशनी में देख क्या पाओगे। जी चाहे, तो उठो, और बत्ती जलाओ, तब इतमीनान से देखो।"

यह प्रस्ताव प्रोफ़ेसर को उस समय पसंद आया, और बत्ती जलाकर पिछले महीने का अंक पत्नी से माँगकर उसके पृष्ठ उलटने लगे।

उन्होंने एक लेख पढ़ा—हँसे, खिलखिलाए। अब तो बड़ा आनंद आने लगा!

बीस मिनट बीत गए। प्रोफ़ेसर तो दूसरा लेख भी पढ़ने लगे!

मेडम को शरारत सूझी। वह बोलीं—

"अच्छा, अब बत्ती बुझा दी जाय। नींद आ रही है।"

उन्होंने जम्हाई ली। प्रोफ़ेसर व्यग्रता से बोल उठे—

"अर-र-र नहीं रानी! अभी न बुझाना, जब तक हम दोनो पढ़ना समाप्त न कर लें। और, अगर तुम इस पत्रिका को पसंद करती हो, तो मैं ही तुमको रोज़ रात को पढ़कर सुनाया करूँ। सचमुच बड़ी मनोरंजक है! नया अंक तुम पढ़ा करना, और पुराना मुझे पढ़ने को दे देना।"

"सचमुच, तुम पढ़ा करोगे प्रोफ़ेसर?"

"क्यों, क्या हुआ? वैसे तो मुझे पढ़ने का चाव है नहीं कुछ, मगर तुम्हें पढ़ने के वक़्त रोशनी की ज़रूरत होती ही है, इसलिये तुम्हारी इच्छा के अनुकूल ही कार्य करना मैं अपना फ़र्ज़ समझता हूँ। अपनी धर्मपत्नी का ख़याल रखना ही चाहिए मुझे।"

श्रीमतीजी यह बात सुनकर हँसीं नहीं—ज़ाहिरा तौर पर—परंतु दिल-ही-दिल में उनको बेहद ख़ुशी हुई, और उन्होंने आप ही अपनी पीठ ठोंककर शाबाशी ले ली!

इस बार तो प्रोफ़ेसर ने ख़ूब मात खाई!

कैसा अमोघ अस्त्र था—निशाना चूका ही नहीं !

और उसके बाद से—

अब मालती को आधी-आधी रात तक पत्रिकाएँ और उपन्यास पढ़ने में बाधा नहीं पड़ती।

---

(५)

नहाने की मुसीबत

(१)

इस नए बँगले में आकर झा-दंपति को जगह की तंगी तो मालूम ही हुई, मगर सबसे बड़ी मुसीबत तो नहाने की थी। बगले में बॉथ-रूम या गुसलखाना था ही नहीं। आँगन में ही नल लगा हुआ था।

श्रीमतीजी प्रतिदिन बड़बड़ाती रहतीं। खुले में स्नान करने की उनकी आदत ही न थी, अतएव यह असुविधा उन्हें बहुत अखरती।

उन्होंने उठते-बैठते प्रोफ़ेसर की नाक में दम कर दिया।

अंत में प्रोफ़ेसर ने बँगले के मालिक से अनुमति लेकर एक बंद बॉथ-रूम अपने खर्च से बनवा ही डाला। स्नानागार वास्तव में सुंदर बना—सफ़ेद चमकती हुई टाइलें जड़ी गईं, बीच में नहाने का हौज़ लगाया गया, ऊपर नल में फ़ौवारा लगा, बिजली की बत्ती फ़िट हुई—संक्षेप में वह अप-टू-डेट बॉथ-रूम दिखाई देने लगा।

मैडम को मुँह-माँगी मुराद मिली—अब वह सुबह-शाम घंटों बॉथ-रूम में घुसी रहतीं। नहाने से उनका जी भरता ही न था। केवल नहाती ही न थीं, वरन् कपड़े भी धोया करती थीं। आँगन में बँधे हुए लंबे तार पर जनाने कपड़ों की प्रदर्शनी-

सी प्रतिदिन लगी रहती—ब्लाउज़, पेटीकोट, ब्रेसियर, जंपर, साड़ियाँ, दस्ताने, मोज़े, तौलिए, चादरें, सब कुछ !

प्रोफ़ेसर बँगले के आँगन में कपड़ों के छोटे-बड़े बंदनवार देखकर घबरा जाते। कई बार श्रीमतीजी से इस विषय में बहस भी हुई, मगर वह न मानीं—उनकी यह आदत न छूटी।

इसके अतिरिक्त देवीजी की एक बुरी आदत और भी थी—

बॉथ-रूम में नहाते समय वह इतना साबुन इस्तेमाल करती थीं कि जगह-जगह उसका फेना-ही-फेना फैल जाता—सारे बॉथ-रूम में साबुन की कीच हो जाती।

पता नहीं, जान-बूझकर या अनजान में ही कारीगरों ने नहानख़ाने के भीतर पानी निकलने की नाली इतनी पतली बनाई थी कि चारो तरफ़ पानी-ही-पानी भरा रहता, जो घंटों में जाकर कहीं बाहर निकल पाता था।

प्रोफ़ेसर जब नहाने के लिये बॉथ-रूम में दाख़िल होते, तो उसमें चार-चार अंगुल पानी भरा मिलता, और चारो तरफ़ हौज़ के किनारे तथा दीवारों पर साबुन का फेना-ही-फेना लगा दिखाई देता। कारण यह था कि मैडम पहले ही स्नान कर आती थीं।

प्रोफ़ेसर को नहाने में बड़ी असुविधा प्रतीत होती। यद्यपि उन्होंने बॉथ-रूम साफ़ करने के लिये एक ब्रुश और पुराना तौलिया वहीं रख छोड़ा था, मगर देवीजी को यह सब काम

करने की फ़ुरसत कहाँ! वह तो नहा-धोकर चल देतीं—बॉथ-रूम गंदा रहे या साफ़, उनकी बला से। दूसरे, उनको यह पता चल ही गया था कि पतिदेव तो नित्य सफ़ाई कर ही लेते हैं, फिर नाहक़ यह ज़हमत सिर पर कौन लादे।

एक दिन जब प्रोफ़ेसर से न रहा गया, तब उन्होंने मालती को बुलाकर कहा—

"डियर! देखो, तुमसे आख़िरी दफ़ा कह रहा हूँ कि क़ायदे से नहाया करो। बॉथ-रूम में साबुन का फेना-ही-फेना फैला रहता है, जब मैं नहाने जाता हूँ। कम-से-कम उसे साफ़ ही कर दिया करो तौलिए से?"

"साफ़ कर दिया करूँ—मैं?"

"हाँ तुम—तुम्हीं तो गंदगी फैलाती हो रोज़। या कहो, तो पहले मैं ही नहा लिया करूँ?"

मेडम हँसती हुई आइने के पास जा खड़ी हुईं, और बोलीं—

"गंदगी—आप तो जैसे बड़ी सफ़ाई ही रखते हैं! साबुन के बिना नहाऊँ कैसे? फिर नहाने में साबुन का फेना फैलता ही है इधर-उधर, इसमें क्या?"

प्रोफ़ेसर ने एक ठंडी साँस लेकर उत्तर दिया—

"कमबख़्ती मेरी आ जाती है, तुम क्या जानो। रोज़ चार-चार अंगुल गँदला पानी साफ़ करता हूँ, तब जाकर स्नान की नौबत आती है। तुम्हें ऐसा मुनासिब नहीं रानी!"

"तो ग़ैरमुनासिब ही सही। हर बात में मुझे रोकते हो, यह तुम्हारी ज्यादती है प्रोफ़ेसर!"

"ज्यादती की कोई बात नहीं। आज वायदा करो कि आइंदा से नहाने के बाद बॉथ-रूम साफ़ करके ही बाहर आया करोगी। मुझे बड़ी तकलीफ़ होती है।"

"मैं वायदा नहीं कर सकती डियर! क्योंकि झुककर तौलिए और ब्रुश से सफ़ाई करने में मेरी पीठ दुखने लगती है। ऐसा दर्द पैदा हो जाता है कि बयान नहीं कर सकती।"

प्रोफ़ेसर ने घड़ी पर नज़र डाली। नौ बज रहा था। वह चुपचाप नहाने चले गए।

नित्य की भाँति उन्होंने बॉथ-रूम की सफ़ाई की, वहाँ भरा हुआ गँदला पानी बाहर निकाला, मैडम के गीले कपड़ों का ढेर एक किनारे रख दिया, और तब स्नान की बारी आई।

स्नान करके वह कमरे में आए, और कपड़े बदलने लगे।

श्रीमतीजी एक पत्र लिखने में जुटी हुई थीं। प्रोफ़ेसर बोले—

"डियर! एक बात कहूँ?"

मैडम ने मुँह घुमाकर उनकी तरफ़ देखा, और मुस्किराती हुई बोलीं—

"हूँ-हूँ।"

"मैं यह कहना चाहता था कि नहाने की समस्या बड़ी

आसानी से सुलझ जाय, अगर मैं तुमसे पहले स्नान कर लिया करूँ। तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

"उहुँः, प्रोफ़ेसर ! यह नहीं हो सकता। जिस बाॅथ-रूम में कोई दूसरा नहा ले, वहाँ बाद में जाकर नहाना तो मुझे पसंद ही नहीं—वहाँ की हवा ही गंदी हो जाती है !"

प्रोफ़ेसर कपड़े पहनकर दूसरे कमरे में चले गए। वह कुछ सोच रहे थे।

(२)

दूसरे दिन, सबेरा हुआ—

दंपति चाय पीने बैठे। मालती ने पति के प्याले में चाय उँडेली, फिर अपना प्याला भरा, और पीने लगी। एक प्लेट में टोस्ट रक्खे हुए थे, उधर संकेत करके श्रीमतीजी बोलीं—

"खाइए न। मैंने अपने हाथ से सेंके हैं।"

प्रोफ़ेसर टोस्ट खाने लगे। इतने में मालती के प्याले की चाय समाप्त हो गई।

वह उठी। उसके उठते ही प्रोफ़ेसर ने पूछा—

"कहाँ जाती हो ? और लो चाय।"

"अभी आई।" कहकर श्रीमतीजी कमरे से बाहर चली गईं।

दो मिनट बाद—बाॅथ-रूम का दरवाज़ा खट्ट से बंद हुआ, और नल खुलने की आवाज़ आई।

मैडम स्नान करने पहुँच चुकी थीं !

प्रोफ़ेसर के हाथ का टोस्ट हाथ में ही रह गया—बड़ी चालाक है मालती ! पहले ही नहाने चली गई—इतना समझाने पर भी नहीं मानती । अच्छा, आने दो बाहर ।

प्रोफ़ेसर मन-ही-मन खीझ रहे थे ।

चाय छोड़कर वह कमरे में चले आए, और अखबार पढ़ने लगे ।

पाँच मिनट—दस मिनट— पूरा आध घंटा बीत गया !

कितना नहाती हैं श्रीमतीजी ? प्रोफ़ेसर ने अखबार मेज़ पर रख दिया, और कमरे में बेचैनी से चहलक़दमी करने लगे । पूरे एक घंटे बाद—सिर के बालों में तौलिया लपेटे सौम्य की आकृति सामने आ खड़ी हुई । प्रोफ़ेसर ने घूरकर पत्नी की ओर देखा—वह मुस्किरा रही थी—शोखी से— शरारत से !

प्रोफ़ेसर बोले—

"तुम बाज़ न आओगी अपनी हरकतों से ?"

देवीजी ने उत्तर दिया—

"हरकतें तो आप ही खूब दिखलाते हैं, मुझे नहीं आतीं ।"

"मेरे कहने का कुछ भी असर नहीं तुम्हारे ऊपर ?"

"कोई असर करनेवाली बात भी कही हो तुमने ?"

"आज पहले से नहाने क्यों चली गई थीं ?"

"मेरी मर्ज़ी ।"

"और मैंने भी कुछ कहा था—भूल गईं ?"

"याद रखने से फ़ायदा ?"

प्रोफेसर खीझ उठे—ज़रूरत से ज़्यादा। मैडम श्रृंगार करने लगीं।

लाचार होकर प्रोफेसर स्नान करने चले गए। वही दैनिक कृत्य—बॉथ-रूम की सफ़ाई, फिर कहीं नहाने की बारी आई।

(३)

दूसरे दिन—

सवेरे लगभग पांच बजे होंगे—प्रोफेसर उठ बैठे।

स्वयं चाय बनाई, पी ली, और मैडम के लिये केटली में ही छोड़ दी।

इसके बाद बरामदे में कुर्सी पर बैठकर अखबार पढ़ने लगे।

सूरज की रोशनी कमरे में आते ही श्रीमतीजी की आँख खुली। देखा, पतिदेव नदारद! घबराकर उठी, और कमरे के बाहर रसोई की तरफ़ चलीं। स्टोव पर केटली रक्खी हुई थी। समझ गईं कि चाय बन गई। फिर क्या था, प्याले में चाय लेकर वह पुनः कमरे में आ गईं। बरामदे की ओर नजर गई—प्रोफेसर को अखबार पढ़ने में तल्लीन पाकर उन्हें बड़ा संतोष हुआ। और प्रोफेसर—

वह भी कनखियों से देवीजी की हरकतें देख रहे थे!

मालती चाय पी रही थी कि प्रोफ़ेसर उठकर कमरे में आए, और बोले -

"गुडमॉर्निंग डियर !"

मालती सोचने लगी, आज यह अभिवादन कैसा ?

उसे बोलने का अवसर न देकर प्रोफ़ेसर तुरंत तौलिया उठाकर बॉथ-रूम में घुस गए।

क्षण-भर बाद—

बॉथ-रूम के भीतर से प्रोफ़ेसर के गाने की आवाज़ सुनाई पड़ी—

"बालम, आय बसो मोरे मन में।"

अब मैडम की समझ में आया प्रोफ़ेसर के अभिवादन का असली मतलब।

ओफ़ ! कितने चालाक हैं प्रोफ़ेसर। मुझसे यह चाल-बाज़ी !

श्रीमतीजी का टेंपरेचर चढ़ गया। उधर प्रोफ़ेसर बेत-हाशा गा रहे थे—

"बालम, आय बसो मोरे मन में।"

पूरे एक घंटे बाद नहाकर प्रोफ़ेसर बाहर निकले। मैडम की ओर उन्होंने देखा भी नहीं, सीधे दूसरे कमरे में चले गए। मैडम खून का घूँट पीकर रह गईं।

जब वह स्नान करने पहुँचीं, तो बॉथ-रूम में देखा—

तौलिया भीगा पड़ा है, साबुन गीला हो गया है, टूथपेस्ट की कैप अलग जा गिरी है, तेल की शीशी ज़मीन देख रही है, और टब में गंदा पानी भरा है।

उनको पूरी मेहनत करनी पड़ी उस रोज़—प्रोफ़ेसर ने सचमुच बुरा बदला लिया।

थोड़ी देर बाद—

जब दंपति भोजन करने बैठे, तो प्रोफ़ेसर ने पूछा—

"रानी ! क्या तुम मुझसे नाराज़ हो ?"

श्रीमतीजी ने उत्तर दिया—

"नहीं डियर ! तुमसे नाराज़ काहे को हूँ। बहुत—बहुत खुश हूँ !"

"आज शाम को सिनेमा चलेंगे; अच्छा। तैयार रहना, मैं ठीक वक़्त से आऊँगा।"

"मैं न जाऊँगी। मुझे शाम को मिसेज़ भटनागर के यहाँ टेनिस खेलने जाना है।"

"आज बड़ा अच्छा फ़िल्म आया है एक।"

"तुम देख आओ। मुझे कुछ ऐसा शौक़ भी नहीं।"

प्रोफ़ेस रसोचने लगे, सिनेमा देखने का शौक़ आज अचानक कैसे ग़ायब हो गया ?

कारण समझने में उन्हें देर न लगी। भोजन समाप्त कर प्रोफ़ेसर ने चुपचाप कॉलेज का रास्ता पकड़ा।

(४)

मैडम ने निश्चय कर लिया कि अब प्रोफ़ेसर की एक न चलने पाएगी। मैं ही पहले स्नान किया करूँगी, चाहे जो हो। वह हमेशा अपनी ही बात रखते हैं, यह ठीक नहीं।

और फिर, पत्नी का भी कुछ अधिकार मानना चाहिए उनको।

मालती ने अच्छी तरह सोच-विचारकर सारी योजना बना डाली, जिसमें वह प्रोफ़ेसर से पहले स्नान करने में सफलता पा सके।

रात को भोजनोपरांत जब वह सोने जाने लगी, तो बॉथ-रूम का ताला बंद करके चाभी अपने साथ लेती गई। अब सबेरे-सबेरे प्रोफ़ेसर कैसे नहाएँगे? रोज़ चकमा दिया करते हैं!

श्रीमतीजी ने चाभी तकिए के गिलाफ़ के भीतर छिपा दी, और आराम से बिछौने पर जा लेटीं।

दूसरे दिन सबेरे—

प्रोफ़ेसर की घबराहट देखते ही बनती थी—कमरे में बौखलाए हुए घूम रहे थे!

बॉथ-रूम बंद—चाभी का पता नहीं! नहाया कैसे जाय?

धर्मपत्नी की करतूत समझकर मन-ही-मन कुपित हुए, मगर ज़ाहिरा कुछ न कहा। जानते थे, नारी-हठ के आगे पराजित होना पड़ेगा।

श्रीमतीजी इतमीनान से बिछौने पर पड़ी-पड़ी चुपचाप मुस्किरा रही थीं। मन में सोचती थीं—कैसा छकाया प्रोफ़ेसर को!

नित्य की भाँति प्रोफ़ेसर कॉलेज जाने लगे, तो उन्होंने कहा—

"डियर! मैं आज ज़रा देर से आऊँगा, एक मित्र से मिलने जाना है।"

मैडम ने उत्तर दिया—

"अच्छी बात है। मेरा भी बुलावा आया है मिसेज़ बोस के यहाँ से, मैं बारह बजे चली जाऊँगी।"

"क्यों, मिसेज़ बोस के यहाँ क्या है?"

"उनके लड़के की सालगिरह, बड़ी धूमधाम रहेगी।"

प्रोफ़ेसर कुछ सोचने लगे। श्रीमतीजी ने पूछा—

"क्यों, क्या सोचने लगे?"

प्रोफ़ेसर ने चौंककर कहा—

"कुछ भी नहीं। मैं छ-सात बजे शाम को वापस आऊँगा।"

वह कॉलेज चले गए। लगभग दो घंटे बाद—

मैडम भी कपड़े बदलकर, शृंगार करके मिसेज़ बोस के बँगले की तरफ़ चलीं।

मैडम के जाते ही प्रोफ़ेसर ने सहसा घर में प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे एक और आदमी था, जिसकी पीठ पर बढ़ईगीरी के औज़ारों का एक झोला लटक रहा था। शायद प्रोफ़ेसर अपनी किसी ज़रूरत से उसे लाए हों।

(५)

उस रात को भी मैडम ने बॉथ-रूम का ताला बंद किया, और चाभी अपने पास रखकर सो गईं। प्रोफ़ेसर ने इस

विषय पर कुछ कहा ही नहीं, अतएव मैडम ने अपनी ही जीत समझी।

प्रातःकाल होते ही श्रीमतीजी इठलाती हुई स्नानागार में जा घुसीं, और नित्य की भाँति स्वच्छंदता से वहाँ क्रीड़ा करने लगीं।

प्रोफ़ेसर कमरे में बैठे हुए रेडियो सुन रहे थे।

देवीजी ने लगभग एक घंटा लगा दिया—खूब नहाईं!

बाँथ-रूम के फ़र्श पर चार-चार अंगुल पानी भर गया। नहाने के टब में कीच हो गई। साबुन का फेना इधर-उधर बह चला। गीले कपड़ों का ढेर लग गया।

श्रीमतीजी सोचती थीं—कैसा मज़ा आया!

अक़्ल से ही सब काम सिद्ध होते हैं। कैसे छके हैं प्रोफ़ेसर! अब कभी मुझे चकमा देने की कोशिश न करेंगे। मैं जीती, वह हारे!

नहा-धोकर देवीजी ने बाँथ-रूम का दरवाज़ा खोलना चाहा—

लेकिन यह क्या—

कुंडी तो खुल गई, मगर द्वार—द्वार तो अपनी जगह पर ज्यों-का-त्यों बंद है!

किवाड़ मानो एक दूसरे से चिपक गए हैं। मैडम ने पीछे की तरफ़ किवाड़ खींचने की कोशिश की।

वे तो तिल-भर भी नहीं खुलते!

दोनों हाथों से वह किवाड़ों को पीटने लगीं, परंतु इससे

क्या, उनकी हथेलियाँ दुखने लगीं, किवाड़ न खुले। आखिर उन्होंने पुकारा—

"प्रोफ़ेसर !"

कोई न बोला। श्रीमतीजी किवाड़ों को ठोकरों-पर-ठोकरें मारने लगीं, किंतु व्यर्थ—द्वार न खुला। वह गला फाड़कर चिल्लाने लगीं—

"प्रोफ़ेसर ! प्रोफेसर !! सुनते नहीं ?"

कोई जवाब न मिला। मैडम ने सोचा, यह हुआ क्या ? बॉथ-रूम की चाभी तो मेरे पास है, फिर बाहर से द्वार किसने बंद किया ? उन्होंने शक्ति-भर किवाड़ों को हिला डाला, मगर वे टस से मस न हुए। श्रीमतीजी की आँखों में आँसू आ गए। पानी में खड़े-खड़े उनको सर्दी मालूम होने लगी। वह फिर चिल्लाईं—

"अरे प्रोफ़ेसर !"

द्वार की दूसरी ओर से प्रोफ़ेसर की आवाज सुनाई पड़ी—

"क्यों, क्या है डियर ?"

"दरवाजे को जाने क्या हो गया है, खुलता ही नहीं। मैं बाहर कैसे निकलूँ ?"

प्रोफ़ेसर के हँसने का शब्द सुनाई पड़ा। वह बोले—

"अभी बाहर निकलने की जल्दी क्या है तुम्हें ? अच्छी तरह स्नान कर लो न ?"

"उहुँ:, मैं नहा चुकी। खोलो दरवाजा।"

"उहुँः, कल मैंने बढ़ई लाकर बाहर से चोर-ताला लगवा दिया है, तुम बंद रहो इसी में। घबराना नहीं, चाभी मेरे पास है।"

"नहीं खोलोगे ?"

"खोलूँगा, मगर पहले बॉथ-रूम में भरी गंगा-जमुना को बाहर निकालो, टब साफ़ करो, गीले कपड़े समेटकर खूँटियों पर टाँग दो, फिर मुझे आवाज़ देना, आकर खोल दूँगा दरवाज़ा।"

प्रोफ़ेसर के जूतों का खट-खट शब्द मालती ने सुना। वह कमरे में वापस लौट गए थे—उसे बॉथ-रूम में बंद छोड़कर ! मारे गुस्से के वह काँपने लगी, मगर करे क्या ? लाचारी से उसे बॉथ-रूम की सफ़ाई करनी पड़ी। पूरा आध घंटा लगा।

तब जाकर कहीं द्वार खुलने की नौबत आई।

उस रोज़ के बाद से—

मैडम अब बाद में नहाने जाती हैं। और, अगर पहले जाती हैं, तो प्रोफ़ेसर को बॉथ-रूम बिलकुल साफ़ मिलता है—सारी व्यवस्था ठीक रहती है।

(६)

दावत की अदावत

(१)

उस दिन मैडम फूली हुई बैठी थीं !

कारण ? कारण यह था कि प्रोफ़ेसर ने रुपए की कमी बतलाकर उनको ढाके की साड़ी ख़रीद देने का वायदा पूरा करने में हिचकिचाहट दिखलाई थी।

वह सोच रही थीं, प्रोफ़ेसर का प्रेम अब दिनोंदिन घटता जा रहा है।

वह मुझे वैसा प्यार नहीं करते, जैसा पहले करते थे। वह मेरी इच्छा भी पूरी नहीं कर सकते एक साधारण-सी साड़ी के लिये—उन्हें मेरे सुख का ज़रा भी ध्यान नहीं !

और, कल ही तो डॉक्टर टंडन के यहाँ दावत है, मैं क्या पहनकर जाऊँगी ?

सभी साड़ियाँ तो दो-चार बार की पहनी हुई हैं, उन्हें पहनना ठीक नहीं, लोग क्या कहेंगे ! प्रोफ़ेसर को इस बात का ध्यान नहीं, परंतु मुझे तो शर्म आती है कि पुरानी साड़ी पहनकर दावत में शरीक होना पड़ेगा !

माना कि प्रोफ़ेसर के पास इस वक़्त रुपए नहीं हैं, मगर क्या वह किसी मित्र से उधार नहीं ले सकते ? ज़रूर ले सकते हैं। पहली तारीख़ को वेतन मिलने पर अदा कर देते। मगर सच बात तो यह है कि वह कंजूसी करते हैं।

यही .उनकी ज्यादती है, अत्याचार है, घोर अपमान है मेरा इसमें।

पत्नी का सुख न चाहनेवाला पति नितांत पशु है, मनुष्य नहीं।

प्रोफ़ेसर को मेरे मानापमान का भी ध्यान नहीं। यह नहीं सोचते कि सैकड़ों स्त्रियों के बीच में जाकर मुझे भी अच्छे कपड़े पहनने की जरूरत पड़ सकती है।

कुछ भी हो, साड़ी तो आएगी ही, जैसे भी आए। मैं ही माँग-जाँचकर खरीदूँगी।

उधर प्रोफ़ेसर अपने कमरे में पलँग पर लेटे-लेटे यह सोच रहे थे कि श्रीमतीजी की जरूरतें दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही हैं। पिछले महीने में तीन सौ क़र्ज लेना पड़े, जो अभी तक अदा नहीं हुए, और नई फ़र्माइश पेश है। मेडम को मेरी आमदनी की सीमा से बाहर जाने में ज़रा भी हिचक नहीं। हमेशा अपना ही हठ, अपनी ही जिद क़ायम रखती है। ऐसा नहीं चाहिए उसको। मैं क़र्ज ले-लेकर कब तक उसकी फ़र्माइशें पूरी करता रहूँ? कोई हद भी होती है।

रोज एक नई बात लेकर झगड़ा करने को तैयार रहती है। बाज आया ऐसी पत्नी से। आएदिन घर में कलह मचाए रहती है!

चाहे जितना समझाता हूँ, मगर उस पर कुछ असर ही नहीं होता, अपनी ही बात रखती है। मैं कहाँ से रुपया

लाऊँ ? चोरी करने तो जाऊँगा नहीं, और न डाका डालूँगा किसी के घर। रहा क़र्ज़, सो वह भी ज़रूरत से ज़्यादा सिर पर लदा हुआ है। अब अधिक लादने की गुंजायश नहीं रही। दूसरे, किससे माँगने जाऊँ ? दोस्तों में अपना सिर नाहक़ ही नीचा हो जाता है। फ़ैशन की ग़ुलामी अच्छी नहीं होती। इतना पढ़-लिखकर भी मालती को अक़्ल नहीं आई। कुछ भी हो ढाके की साड़ी तो न आएगी।

मेरी स्थिति ऐसी नहीं कि इस वक़्त दो सौ रुपए फूँक डालूँ।

डॉक्टर टंडन के यहाँ दावत में जाना ज़रूर है। मगर तीन दर्जन साड़ियाँ रक्खी हैं, उन्हीं में से एक पहनकर जा सकती है। नई साड़ी तो न लाऊँगा, न लाऊँगा।

(२)

पास ही, प्रोफ़ेसर याज्ञिक के बँगले में श्रीमती मालती मिसेज़ याज्ञिक के पास बैठी हुई कह रही थीं—

"क्या बतलाऊँ, ऐसी ही ज़रूरत आ पड़ी, जो आपको आज तकलीफ़ दी।"

मिसेज़ याज्ञिक ने उत्तर दिया—

"कोई बात नहीं, गृहस्थी में ज़रूरतें तो लगी ही रहती हैं, मगर प्रोफ़ेसर झा को इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।"

मैडम बोलीं—

"क्या बताऊँ बहन ! रोना तो इसी बात का है, वह ज़रा भी नहीं सोचते कि घर की जरूरतें भी कुछ हो सकती हैं।"

"ऐसी लापरवाही किस काम की, जो तुम्हें दौड़ना पड़े इधर-उधर।"

"फिर क्या किया जाय, वह तो सदा के लापरवाह हैं।"

"अच्छा, बैठो, मैं रुपए देती हूँ तुम्हें।"

मिसेज याज्ञिक उठकर भीतर गईं, और सौ-सौ रुपए के दो नोट लाकर मैडम के हाथों में रखते हुए बोलीं—

"तुम अपना काम तो निकालो इस वक़्त, मगर प्रोफ़ेसर से मैं कहूँगी ज़रूर। उनको जब तक बाहरवाले लानत-मलामत न करेंगे, तब तक वह होश में न आएँगे।"

"धन्यवाद !"

मैडम वहाँ से उठकर सड़क पर आईं, ताँगा किया, और बाज़ार पहुँचकर चटपट ढाके की साड़ी ख़रीद डाली। साड़ी लेकर जब वह घर लौटीं, तो दरवाज़े पर ही प्रोफ़ेसर से भेंट हुई। वह बाहर ही लॉन में चहलक़दमी कर रहे थे।

श्रीमतीजी के हाथों में साड़ी का बंडल देखकर उन्होंने पूछा—

"क्या ले आईं ?"

जवाब मिला—

"आपसे मतलब ?"

श्रीमतीजी भीतर कमरे में दाखिल हुईं—प्रोफ़ेसर पीछे-पीछे! उन्होंने फिर पूछा—

"आखिर क्या आया है इस बंडल में ?"

मैडम कुछ न बोलीं। प्रोफ़ेसर ने बंडल में हाथ लगाया, श्रीमतीजी तिनक गईं, बोलीं—

"रहने दीजिए, आपको क्या ?"

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"मैं जानना चाहता हूँ, आखिर तुम लाई क्या हो ?"

"लाई हूँ वही, जो आप नहीं लाते थे। देखिए आँखें खोलकर। मैडम ने बंडल खोलकर ढाके की जरी के बार्डर-वाली साड़ी सामने फैला दी!

प्रोफ़ेसर के मुँह से निकला—

"रुपए कहाँ से आए ?"

"कहीं से आए, आपने तो नहीं दिए ?"

"तो तुम कर्ज़ माँगती फिरती हो फ़ैशन के पीछे ?"

"कर्ज़ माँगती हूँ या ख़ैरात लेती हूँ, आपसे क्या ?"

"मुझे तुम्हारी यह आदत पसंद नहीं।"

"आपकी पसंद के पीछे मैं अपनी इज्ज़त-आबरू खाक में नहीं मिला सकती।"

"बड़ी इज्ज़त बढ़ती है न ऐसे कामों से ?"

"जब आप ही ख़याल नहीं करते, तो दूसरों की परवा क्या मुझे ?"

"इसका मतलब यह कि मैं अगर तुम्हारी फ़र्माइशें पूरी न कर सकूँ किसी वजह से, तो तुम माँग-जाँचकर अपनी मनमानी करो ?"

"करना ही पड़ेगा।"

मैडम साड़ी उठाकर भीतर के कमरे में चली गईं।

प्रोफ़ेसर सोच रहे थे—ऐसी हरकतें अब बर्दाश्त नहीं होतीं।

(३)

दूसरे दिन—

ठीक पाँच बजे शाम को प्रोफ़ेसर कपड़े पहनकर घर से बाहर निकल गए। मैडम मालती समझ गईं कि वह डॉक्टर टंडन के यहाँ दावत में मेरे साथ हर्गिज़ शामिल न होंगे। न जायँगे, तो न सही, मैं अकेली ही जाऊँगी—मैडम ने सोच लिया।

मैडम ने अच्छी तरह स्नान किया, फिर आइने के सामने शृंगार करने बैठीं। पूरे एक घंटे बाद वह ढाके की साड़ी पहनकर खूब ठाट-बाट से कमरे में चहलक़दमी करने लगीं। दावत में जाने की पूरी तैयारी उन्होंने कर ली थी।

'ईवनिंग-इन-पेरिस'-नामक सेंट की सुगंधि उनके वस्त्रों से निकलकर वायु में व्याप्त हो रही थी—सारा कमरा महक रहा था। अपने सौंदर्य पर इठलाती हुई श्रीमती मालती बार-बार आइने पर दृष्टि डालतीं और फूली न समातीं। वह

सोचती थीं—क्या मुझसे भी सुंदर कोई स्त्री इस समारोह में आएगी ? शायद ही आए !

उन्होंने घड़ी पर दृष्टि डाली—

सवा छः बज चुके थे—पौन घंटा अभी बाकी था।

अचानक द्वार खुला, और प्रोफेसर याज्ञिक के कमरे में आते हुए बोले—

"गुड ईवनिंग मिसेज़ झा ! प्रोफेसर कहाँ हैं ?"

अभिवादन का उत्तर देकर सोफे की ओर संकेत करते हुए मालती ने कहा—

"आइए, विराजिए। वह कहीं बाहर गए हैं अभी-अभी।"

प्रोफेसर याज्ञिक बैठते हुए बोले—

"मैं डॉक्टर टंडन के यहाँ दावत में जा रहा था। क्या प्रोफेसर न जायँगे ?"

मैडम ने उत्तर दिया—

"उनकी बात वही जानें—मैं तो जा रही हूँ।"

"तब ठीक रहा। हमारा आपका साथ रहेगा। मगर प्रोफेसर को जाना जरूर चाहिए था।"

"अजी, उनका कौन ठीक—जायँ, न जायँ।"

प्रोफेसर याज्ञिक बोले—

"आप तो तैयार हो ही गईं, अच्छा किया।"

उन्होंने श्रीमती मालती के नख से शिख तक एक दृष्टि डाली। कितनी सुंदर थी मालती !

मालती ने पूछा—

"मिसेज़ याज्ञिक न जायँगी क्या ?"

"उनका जी अच्छा नहीं है, वरना जातीं तो ज़रूर।"

"क्यों, क्या बात है ?"

"कुछ हरारत-सी मालूम होती है, इसी से नहीं जा रही हैं।"

"कुछ दवा वग़ैरा का इंतज़ाम कर दिया है आपने ?"

"उहुँः, ज़रा-ज़रा-सी बीमारी में दवा क्या करूँ, आप ही ठीक हो जायँगी।"

मैडम ने मुस्किराकर एक कटाक्ष-भरी दृष्टि प्रोफ़ेसर याज्ञिक पर डाली, और कहा—

"पुरुषों को घर की स्त्रियों का किंचित् भी ध्यान नहीं रहता।"

"आप ऐसा समझती हैं ?"

"समझती हूँ अवश्य, अनुभव ही बता देता है।"

"यह आपका भ्रम है।"

"ऐसी लापरवाही भ्रम नहीं कही जा सकती।"

"मगर साधारण-सी बातों में दवा का आदी होना तो ठीक नहीं। प्रकृति भी अपना कार्य करने की सुविधा पाने की अधिकारिणी होती है, यह बात आप स्वीकार करती हैं या नहीं ?"

"कुछ भी हो, पुरुषों का यह अन्याय ही कहा जायगा।"

घड़ी ने साढ़े छ का घंटा बजाया।

प्रोफ़ेसर याज्ञिक ने उठते हुए कहा—

"चलिए न। आध घंटा तो रास्ते में ही लगेगा।"

"चलिए।"

मैडम मालती और प्रोफ़ेसर याज्ञिक बँगले के बाहर निकल गए।

(४)

ठीक उसी समय—

प्रोफ़ेसर याज्ञिक के यहाँ ड्राइंग-रूम में बैठे हुए प्रोफ़ेसर झा मिसेज़ याज्ञिक से कह रहे थे—

"अजीब आदमी हैं यह भी! अपने वायदे का भी ख़याल नहीं रखते।"

मिसेज़ याज्ञिक ने उत्तर दिया—

"मुझसे तो कुछ कहा ही नहीं। नहीं कह सकती, डॉक्टर टंडन के यहाँ दावत में शरीक होंगे या नहीं।"

"निमंत्रण तो आप दोनो को मिला होगा न ?"

"मिला था, मगर उनको इस बात ध्यान भी रहे, तब न ?"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद प्रोफ़ेसर झा ने कहा—

"मैं भी इसीलिये आया था कि उनके साथ ही जाऊँगा, मगर—"

मिसेज़ याज्ञिक बोलीं—

"अजी, उनको परवा क्या? इधर-उधर घूमने से छुट्टी मिले, तब निमंत्रण का ध्यान आए।"

"किंतु गए किधर?"

"कौन जाने—उनका कोई ठीक नहीं।"

"तो मुझे अकेले ही जाना पड़ेगा अब?"

"क्यों, मालती नहीं जा रही है?"

"उसकी तबियत ठीक नहीं है आज। आप न जायँगी?"

मिसेज़ याज्ञिक कुर्सी से उठकर खड़ी हो गईं, और बोलीं—

"मेरे जाने की किसे चिंता है जनाब? हमारा समाज अभी स्त्रियों की क़द्र करना नहीं सीख पाया है।"

वह टहलती हुई मेज़ के पास पहुँचीं, और फूलदान में रक्खे हुए गुलदस्ते से एक फूल निकालकर सूँघने लगीं।

प्रोफ़ेसर झा कुछ सोचने के बाद बोले—

"बात तो ठीक है, मगर प्रोफ़ेसर याज्ञिक तो ऐसे लापरवाह व्यक्ति हैं नहीं। क्या खयाल है आपका?"

मिसेज़ याज्ञिक ने घूरकर प्रोफ़ेसर झा की ओर देखते हुए उत्तर दिया—

"वह आपके मित्र हैं, अतएव आप उनके खिलाफ़ कोई बात सुनना पसंद न करेंगे, यह भी स्वाभाविक ही है।"

प्रोफ़ेसर झा उठ खड़े हुए, और पास आकर बोले—

"मैं न्याय के पक्ष का समर्थक हूँ मिसेज़ याज्ञिक! मित्रता का संबंध न्याय की आवाज़ को दबा नहीं सकता।"

मिसेज़ याज्ञिक के होठों पर मुस्किराहट आई। उन्होंने कहा—

"औरों की तरह आपने भी मुँहदेखी बात कह दी। अवसर की अनुकूलता समझने में पुरुषों का चातुर्य प्रशंसनीय होता है प्रोफ़ेसर! आप भी इस परिभाषा से अलग थोड़े ही हैं!"

प्रोफ़ेसर झा भिटपिटा गए। उन्होंने अपना हैट उँगलियों पर फिराते हुए उत्तर दिया—

"आपके विचारों का प्रतिवाद नहीं करना चाहता मिसेज़ याज्ञिक! केवल इतना ही कह सकता हूँ कि ऐसी परिस्थिति में स्त्रियों को अपनी इच्छा को प्रधानता देनी चाहिए, इसका उन्हें अधिकार होता है।"

मिसेज़ याज्ञिक के मुख-मंडल पर एक प्रकाश-सा छा गया। वह कहने लगीं—

"धन्यवाद! मैं भी ऐसा ही सोचती थी। वह कहीं चले गए मुझसे बिना कहे, तो मैं भी जा सकती हूँ बिना उनसे कहे।"

"क्यों नहीं। यही समुचित उत्तर होगा उनके व्यवहार का।"

"तो आप ठहरिए, मैं अभी कपड़े बदलकर आई। डॉक्टर टंडन के यहाँ आपके साथ चलूँगी।"

मिसेज याज्ञिक कपड़े बदलने के लिये दूसरे कमरे में चली गईं।

प्रोफेसर झा क्या सोच रहे थे—कौन जाने ?

(५)

लगभग आधे घंटे बाद—

डॉक्टर टंडन के बँगले में मेहमानों की भीड़भाड़ के बीच से प्रोफेसर झा और मिसेज याज्ञिक धीरे-धीरे निकलते हुए एक मेज की तरफ बढ़ रहे थे, जिस पर भाँति-भाँति की खाद्य वस्तुएँ सजाकर रक्खी हुई थीं।

दाहनी तरफ से आवाज आई—किसी स्त्री की—

"ओह ?"

प्रोफेसर झा और मिसेज याज्ञिक की आँखें एक साथ उधर उठ गईं, किंतु—

वहीं से पुनः आवाज आई—किसी पुरुष की—

"यह बात है ?"

दोनों ने देखा, पहचाना, दाहनी ओर की मेज पर मैडम मालती और प्रोफेसर याज्ञिक विराजमान थे !

उन्होंने प्रत्यक्षतया निर्भयता के साथ इसी मेज के पास आसन ग्रहण किया।

इसके बाद, दावत में क्या हुआ, और कैसी गुजरी, इसका अनुमान हम नहीं कर सकते। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उपस्थित मेहमानों में चार व्यक्ति

ऐसे थे, जिनको उस अवसर पर ज़रा भी आनंद न आ रहा था।

* * *

और, उसी रात को अपने-अपने घर लौट आने के बाद—

मिस्टर याज्ञिक तथा मिस्टर झा, दोनो अपनी-अपनी श्रीमतियों पर बड़ी देर तक बिगड़ते रहे, लेकिन उनको जो जवाब सुनने पड़े, वे शायद उन्होंने जीवन में कभी न सुने होंगे। विजय-पराजय का निर्णय भी नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनो ही पक्ष अपनी बात रखने के आदी थे।

परिणाम, जो बाद में दिखाई दिया, यह था कि उन चारों व्यक्तियों में परस्पर, कुछ दिनों के लिये बोलचाल बंद हो गया।

(७)

किसकी ग़लती ?

(१)

प्रोफ़ेसर झा हाथ में एक टेलीग्राम लिए हुए कमरे में आकर बोले—

"डियर! श्यामू आ रहा है परसों। अफ़सोस यह है कि मैं आज रात को 'एजूकेशनल कॉन्फ्रेंस' में शामिल होने इलाहाबाद जा रहा हूँ। तुम उसे ले आओगी स्टेशन जाकर?"

मैडम ने 'पायनियर' अख़बार मेज़ पर रखते हुए उत्तर दिया—

"क्या वह दूध-पीते बच्चे हैं, जो रास्ता भूल जायँगे? अपने आप नहीं आ सकते घर?"

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"यह मतलब नहीं मेरा—वह आ जायगा अपने आप ही, मगर मेरा भी तो कुछ फ़र्ज़ है—मैं बड़ा भाई हूँ, चार बरस बाद वह बंबई से आ रहा है, क्या उसे लेने भी न जाय कोई?"

श्रीमतीजी झुँझला उठीं। बोलीं—

"वही पुराने तौर-तरीक़े! रहे लकीर के फ़क़ीर प्रोफ़ेसर!"

"इसमें पुरानेपन की क्या बात?"

"एटीकेट ही कौन-सा है कि बड़े को छोटे का स्वागत करना पड़े?"

"यह तो ममता और प्यार की बात होती है।"

"तो ममता और प्यार आप ही दिखा सकते हैं—मुझसे न बनेगा। अपने श्यामू का स्वागत करते जाइए इलाहाबाद जाने के पहले, समझे?"

"तुम इतना भी नहीं कर सकतीं मेरी ग़ैरमौजूदगी में? तुम्हारा तो कोई नाता ही नहीं है जैसे?"

"नाता? 'जान न पहचान, बड़ी बीबी सलाम!' मुझे वह क्या पहचानेंगे, और मैं ही उनको क्या जानूँ—ज़रा सोचो तो?"

"इसमें कितनी देर लगनी है—लंबा-सा, गोरा-सा, इकहरा बदन, दाढ़ी-मूछ साफ़, जवान आदमी, सूटेड-बूटेड। बस, देखते ही पहचान लोगी।'

"कोई खास निशानी पहचान की?"

प्रोफ़ेसर कुछ सोचते रहे, फिर बोले—

"अजी बस, इतने से ही पहचान लोगी। ख़ास निशानी कुछ भी नहीं।"

"तो आप यह काम मुझे सौंप ही रहे हैं जनाब?"

प्रोफ़ेसर ने मैडम का हाथ अपने हाथ में लेकर उत्तर दिया—

"श्योरली—ज़रूर-ज़रूर।"

"उनका स्वागत-सत्कार करना होगा—खूब अच्छी तरह से या मामूली?"

"डियर! बच्चों-जैसी बातें करती हो तुम। मेरा एक

अकेला भाई, उसका स्वागत-सत्कार भी न हो अच्छी तरह ? कैसी भाभी हो तुम ?"

"क्या कहने हैं भाभी के ! भाईजान ग़ायब हो रहे हैं अच्छे मौक़े पर !"

मैडम उठकर खिड़की के पास जा खड़ी हुईं। प्रोफ़ेसर ने पास जाकर धीरे से कंधे पर हाथ रक्खा, और बोले—

"एक बात का ख़याल रखना और ?"

"वह क्या ?"

"वह मसख़रा बड़ा है—कहीं हँसी-हँसी में लड़ न बैठना उससे। तुम भाभी हो, उसका रिश्ता है मज़ाक़ करने का, समझीं ?"

"ख़ूब समझी। और कुछ हिदायत ख़ास ?"

"और तो तुम ख़ुद ही समझदार हो रानी ! तुम्हें बतलाने की ज़रूरत नहीं।"

और फिर—

उसी रात को प्रोफ़ेसर झा इलाहाबाद चले गए।

(२)

थोड़ी दूर पर—

प्रोफ़ेसर याज्ञिक के बँगले के दाहनी तरफ़ प्रोफ़ेसर कपूर का बँगला था।

मिसेज़ कपूर बंबई से आया हुआ अपने पति का पत्र पढ़ रही थीं। पत्र में लिखा था—

"जनार्दन २२ ता० को सवेरे की ट्रेन से वहाँ पहुँचेगा। स्टेशन जाकर उसे ले आना। उसने मुझे बंबई में सूचना दी है, क्योंकि अपने यहाँ आने का समाचार मैं उसे दे चुका था। मैं २६ ता० तक वापस लौटूँगा, फिर पहली को जनार्दन के साथ हम लोग रवाना होंगे। हाँ, एक बात और है -तुम जनार्दन को पहचानोगी कैसे? वह लंबे शरीर का गोरा-सा युवक है। चश्मा लगाता है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। पहले तो नहीं लगाता था।.............."

मिसेज़ कपूर सोचने लगीं—अपरिचित जनार्दन को पहचानना और उसे स्टेशन से घर लेकर आना भी एक समस्या होगी। वह तो कुछ सोचते ही नहीं—वहीं से बैठे-बैठे हुक्म चला दिया। उनकी फूफी का लड़का है जनार्दन—मेरा तो कोई नहीं। गैर ही है एक तरह से—उसे घर में ठहराना होगा! क्या खूब!

मिसेज़ कपूर ने पति की चिट्ठी मेज़ पर पटक दी।

उनकी समझ में कुछ न आता था।

धीरे-धीरे अँधेरा होने लगा। वह उठीं, और रसोई-घर में भोजन की तैयारी करने चली गईं। अगले दिन सवेरे ही तो २२ ता० थी।

(३)

सवेरे साढ़े आठ बजे—

रेलवे-स्टेशन के पाँच नंबर प्लेटफ़ार्म पर दिल्ली-एक्सप्रेस आकर रुकी।

एक संभ्रांत युवती की आँखें ट्रेन से उतरते हुए मुसाफ़िरों को पहचानने की कोशिश कर रही थीं। न-जाने कितने व्यक्ति उसके पास से होकर चले गए।

परंतु जिसे वह लेने आई थी, उसका कहीं पता न था।

मुसाफ़िरों की भीड़ समाप्त हो चली थी।

युवती एक किनारे हटकर खड़ी हो गई। उसके माथे पर पसीने की बूँदें झलक आई थीं, जिनको वह रूमाल से पोंछ रही थी।

सहसा किसी ने पास आकर उससे पूछा—

"माफ़ कीजिएगा, क्या आप प्रोफ़ेसर........."

युवती की आँखें ऊपर उठ गईं। उसने देखा—

गोरे रंग का लंबा-सा एक युवक सूट-बूट से सुसज्जित उसके सामने खड़ा मुस्किरा रहा था।

युवती के मुँह से निकला—

"ओह! आप आ गए? मैं तो ट्रेन के मुसाफ़िरों को देखते-देखते निराश हो चली थी। आइए, चलें।"

बिना कुछ और बातचीत किए युवक ने अपना सूटकेस उठाया, और युवती के पीछे-पीछे चल पड़ा।

दोनो स्टेशन से बाहर हो गए।

❋　　❋　　❋

उनके जाते ही—

प्लैटफ़ार्म के जँगलेवाले फाटक पर खड़े हुए एक फ़ैशनेबुल युवक ने सहसा ठंडी साँस ली। फिर उसने कुली को बुलाकर अपना अटैची और बिस्तरा उसके सिर पर रखवाया, और प्लैटफ़ार्म से बाहर जाने लगा।

अचानक सामने से एक अप-टु-डेट रमणी भागती हुई आती दिखाई पड़ी, जो युवक के पास आकर ठहर गई, और बोली—

"क्या आप प्रोफ़ेसर.. ... ."

वह हाँप रही थी। उसका मतलब समझकर युवक ने कहा—

"नमस्ते भाभी! मैं तो निराश हो चुका था कि आप नहीं आएँगी।"

युवती ने उत्तर दिया—

"माफ़ कीजिएगा, मुझे देर हो गई, कोई सवारी नहीं मिलती थी, इसलिये। आइए, चलें।"

दोनो चल दिए। स्टेशन के बाहर ताँगा खड़ा था। उस पर सामान रखवाकर दोनो चल पड़े।

❋ ❋ ❋

उस दिन—

कॉलेज के 'स्टाफ़-कालोनी' में बने हुए दो बँगलों में दो भाभियाँ अपने दो देवरों के स्वागत-सत्कार में लगी हुई थीं। वे उसी दिन के आए हुए नए मेहमान थे।

(४)

उसी दिन २६ ता० थी।

रात के कोई दस बजे होंगे। अपने बँगले के आगे पहुँच-कर प्रोफ़ेसर झा ने जब ताँगा रोका, तो अचानक उनके कानों में वायलिन की आवाज़ के साथ श्रीमती मालती के गाने की मधुर ध्वनि गूँज उठी।

वह ठिठक गए। नौकर को भी आवाज़ देते न बना।

ताँगेवाले ने उनका सामान उतारकर बँगले के बरामदे में रक्खा। प्रोफ़ेसर ने उसके पैसे देकर उसे बिदा किया। फिर वहीं खड़े-खड़े कुछ सोचने लगे।

श्रीमतीजी गा रही हैं। कैसे इतमीनान का मौक़ा मिला है।

और यह वायलिन बजानेवाला कौन है ?

हाँ-हाँ—याद आया, श्यामू आ गया होगा।

मगर श्यामू को वायलिन का शौक़ कब से हुआ ? पहले तो नहीं बजाता था ?

श्यामू ही है क्या ? अच्छा, देखना चाहिए चुपके-चुपके।

प्रोफ़ेसर दबे पाँव दरवाज़े के निकट पहुँचे।

दरवाज़ा खुला था, सिर्फ़ किवाड़ भिड़े थे। वह भीतर घुसे। चुपचाप दूसरे कमरे के द्वार पर पहुँचे, और किवाड़ों में लगे हुए काच से झाँककर जो दृश्य देखा, वह उनको किं-कर्तव्य-विमूढ़ कर देने के लिये पर्याप्त था।

प्रोफ़ेसर ने देखा—

मैडम मालती बिछौने पर अधलेटी अवस्था में हैं। बिजली का पंखा चल रहा है। उनकी रेशमी साड़ी का आँचल खिसककर एक ओर जा पड़ा है। वह बड़ी भावभंगी प्रदर्शित करती हुई एक गाना गा रही हैं।

सामने एक सुंदर नवयुवक बैठा हुआ बड़ी तन्मयता से वायलिन बजा रहा है। वह श्रीमती मालती की ओर देखकर मुस्किराता भी है।

प्रोफ़ेसर सोचने लगे—

इसे तो पहले कभी देखा ही नहीं! यह है कौन?

और, श्रीमतीजी की इतनी बेतकल्लुफ़ी!

वह दरवाज़ा खोलते हुए, सीधे धड़धड़ाते हुए भीतर पहुँच गए।

मैडम हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुईं।

प्रोफ़ेसर की आँखें अंगारों की तरह लाल हो रही थीं। उन्होंने पत्नी की ओर देखा, फिर उस युवक की ओर।

मैडम ने पूछा—

"क्यों, खैरियत तो है?"

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"खैरियत की बच्ची! समझ गया तेरी करतूत। यार को बिठा रक्खा है मेरे घर में?"

मैडम बोलीं—

"तुम पागल हो गए हो प्रोफ़ेसर ?"

"आँखों से सब कुछ देख लेने के बाद—पागल हो गया हूँ।"

"क्यों, श्यामू को भी नहीं पहचानते ?"

प्रोफ़ेसर ने युवक की ओर इशारा करते हुए कहा—

"मुझे अंधा बनाती है ? यह श्यामू है ?"

"फिर कौन है ? तुम्हीं ने तो इनको........"

युवक ने भिटपिटाकर कहा—

"माफ़ कीजिएगा, मेरी समझ में हम लोग ग़लतफ़हमी में हैं ! मैं श्यामू नहीं हूँ । मेरा नाम है जनार्दन।"

इसके बाद—

जो कुछ हुआ, उसे बयान करने की आवश्यकता नहीं।

* * *

थोड़ी देर बाद—

एक युवक प्रोफ़ेसर कपूर के बँगले से निकलकर प्रोफ़ेसर झा के बँगले में घुसा।

और दूसरा—

प्रोफ़ेसर झा के यहाँ से निकलकर प्रोफ़ेसर कपूर के बँगले में !

ग़लती सुलझ गई, मगर—

प्रोफ़ेसर कपूर तथा प्रोफ़ेसर झा, दोनो-के-दोनो कई दिनों तक अपनी-अपनी श्रीमतियों से फूले रहे !

ग़लती किसकी थी, इसे समझने की किसी ने कोशिश न की।

(८)

मुसाफ़िरी के पहले

उस रोज़—

मैडम बड़े ज़ोर से दिल्ली जाने को तैयारी कर रही थीं।

अपनी बहन की शादी में।

प्रोफ़ेसर भी साथ जा रहे थे।

मैडम के कमरे में एक अजीब दृश्य दिखाई देता था। दो-तीन छोटे-बड़े चमड़े के सूटकेस खुले पड़े थे। पलँग पर, खूँटियों पर, फ़र्श पर, सोफ़े और कुर्सियों पर, मेज़ पर कपड़ों की अच्छी-खासी प्रदर्शनी लगी हुई थी।

अस्त-व्यस्त पड़ी हुई साड़ियाँ, ब्लाउज़, पेटीकोट, जूते, मोज़े, फ्राक, चोटी में गूँथने के रिबन आदि अपनी-अपनी छटा दिखला रहे थे।

मैडम बिजली की तरह लपक-लपककर सामान इकट्ठा करतीं, और छाँटतीं, मगर उनकी समझ में कुछ न आता था।

पास के दूसरे कमरे में प्रोफ़ेसर झा भी उसी तरह अति व्यस्त नज़र आते थे। उनका कमरा भी किसी फ़िल्म-कंपनी के वस्त्रालय से बुरा न दिखाई देता था। वह भी भौचक्के-से जाने क्या-क्या ढूँढ़ते, और उसके न मिलने पर चुपचाप आ खड़े होते। उनकी समझ में भी नहीं आ रहा था कि क्या

साथ ले जायँ, और क्या छोड़ जायँ। कभी-कभी वह सिर खुजलाते हुए कुछ सोचने लगते थे।

कभी थककर कुर्सी पर बैठ जाते।

ज्ञात नहीं, दंपति के मन में कौन-सी चिंता बैठी थी, जिसका निराकरण करना उन्हें सूझ न पड़ता था।

* * *

मैडम मालती ने सुना--

अपने कमरे से प्रोफ़ेसर पुकार रहे थे—

"डियर! तुमने मेरी हरे रंग की पतलून तो नहीं देखी? वही, जिसके बटन कल तुमने सिए थे?"

मैडम ने जवाब दिया—

"तुम्हारी पतलून? मैं क्या जानूँ।"

प्रोफ़ेसर की आवाज़ आई--

"ज़रा अपने कमरे में देखो, मुझे मिल नहीं रही है।"

मैडम ने इधर-उधर दृष्टि डालते हुए कहा—

"तुम्हीं आकर देख जाओ डियर! मुझे फ़ुर्सत नहीं है। अभी मेरा ही सामान नहीं रक्खा गया है।"

फिर प्रोफ़ेसर ने कहा—

"ज़रा तलाश कर लेतीं। मैं अभी और सामान रख रहा हूँ।"

मैडम ने जवाब दिया—

"अरे, यहीं तो रक्खी है, आकर ले जाओ।"

प्रोफ़ेसर श्रीमतीजी के कमरे में दाखिल होकर बोले—

"कहाँ है ?"

श्रीमतीजी ने कपड़ों के एक ढेर की ओर संकेत करते हुए कहा—

"वह—उधर।"

प्रोफ़ेसर ने कपड़ों के ढेर में से हरे रंग का एक कपड़ा खींचकर बाहर निकाला, और उस पर नज़र डालकर बोले—

"क्या कहने हैं तुम्हारी अक़्ल के! यह मेरी पतलून है ?"

देवीजी क्रोध में भरकर कहने लगीं—

"नहीं है, तो मैं क्या करूँ ? तुम अपने कपड़े ठिकाने से क्यों नहीं रखते ?"

"वाह ! अपना ब्लाउज़ भी नहीं पहचानतीं। यह तो वही है, जो मेरी पतलून के बचे हुए कपड़े से तुमने सिलाया था ?"

"होगा, मैं क्या करूँ ?"

प्रोफ़ेसर ने एक ठंडी साँस लेकर कमरे में बिखरे हुए वस्त्रों पर दृष्टि डाली, और कहा—

"तुम बारात में शामिल होने जा रही हो या सदा के लिये शहर छोड़ रही हो ?"

देवीजी झुँझला उठीं—

"बस, बातें बनाने को कोई इनसे कह दे। यह तो नहीं होता कि ज़रा मेरी मदद करें, और सारा सामान ठीक-ठिकाने से बक्सों में रखवा लें, उल्टे आलोचना करने लगते हैं।"

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"तुम्हारी मदद? तुम्हें मदद की क्या जरूरत? मैं तो सिर्फ अपनी पतलून तलाश करने आया था।"

श्रीमतीजी ने एक साड़ी को तह करते हुए कहा—

"तो तलाश कर लो न? रोकता कौन है?"

"तलाश करने में तुम्हीं जरा मदद कर देतीं?"

"मुझे मरने की भी फ़ुर्सत नहीं। अपना काम अपने ही हाथों ठीक होता है।"

"यह तो मैं भी जानता हूँ, मगर तुम मेरी स्त्री हो, क्या इतना भी नहीं कर सकतीं?"

यह बात सुनते ही मैडम ने साड़ी तो पलँग पर पटक दी, और घूम पड़ीं प्रोफ़ेसर की ओर।

उन्होंने कहा—

"यह लेक्चर देने के बजाय अगर तुम मेरे कपड़े रखवा लेते, तो ज्यादा अच्छा होता। प्रोफ़ेसर! क्या हम लोग जल्दी से एक दूसरे की तैयारी नहीं करा सकते?"

प्रोफ़ेसर मुस्किराते हुए बोले—

"अब आईं रास्ते पर डियर! मगर पहले तुम मेरे कपड़े रखवा लो चलकर।"

"हाँ-हाँ, मुझे मंजूर है। मगर यहाँ देखो, मेरे कमरे में—पहले मेरा सामान ठीक करवा लो प्रोफ़ेसर!"

"अच्छा, तुम्हारा ही कहना सही। तुम बतलाती जाओ,

मैं एक-एक चीज़ उठाकर देता जाता हूँ, तुम बक्सों में रखती जाओ।"

"अच्छा, मंजूर है।"

❀ ❀ ❀

सामान पैक करने की कार्रवाई चलने लगी।

श्रीमतीजी ने कहा—

"अच्छा! मेरे रिबन का डिब्बा?"

प्रोफ़ेसर इधर-उधर देखते हुए बोले—

"रिबन का डिब्बा? है कहाँ?"

देवीजी घूम पड़ीं—

"क्या ख़ूब! मुझे ही खोजना होता, तो तुमसे क्यों कहती?"

"मगर, याद तो होगा तुम्हें कि रक्खा कहाँ है?"

"बस, रहने दीजिए। आए हैं मदद करने! पूछते हैं मुझसे?"

"डियर! तुम तो नाराज़ हो गईं। ज़रा बता ही दो, तो काम जल्दी निपट जाय।"

"तलाश करो न।"

प्रोफ़ेसर ने कपड़ों का ढेर इधर-उधर फेंकना शुरू किया। घटना-वश कपड़ों के नीचे रक्खा हुआ इत्रदान भी गिरकर चकनाचूर हो गया!

"मैडम क्रोध से चीख़ पड़ीं—

"हाय मेरा इत्रदान !"

प्रोफ़ेसर सिटपिटाकर कहने लगे—

"सारी—अफ़सोस !"

वह चुपचाप सिर पकड़कर एक कुर्सी पर बैठ गए। मैडम इत्रदान के टुकड़े बटोरती हुई कहने लगीं—

"बस, हो चुका तुमसे कुछ काम। इतना नुक़सान कर डाला !"

प्रोफ़ेसर ने एक ठंडी साँस लेकर जवाब दिया—

"माफ़ करना रानी ! दूसरा ला दूँगा तुम्हें—दिल्ली चल ही रहे हैं।"

श्रीमतीजी ने दीवार पर लटकी हुई घड़ी पर दृष्टि डाली, और चौंककर कह उठीं—

"अरे, साढ़े आठ बज गया ! सिर्फ़ एक ही घंटा तो है गाड़ी छूटने में ? जल्दी प्रोफ़ेसर ! ज़रा जल्दी से सामान रखवा लो न।"

प्रोफ़ेसर फिर काम में जुट गए।

एक सूटकेस जैसे-तैसे पैक हुआ। दूसरे की तैयारी शुरू हुई।

देवीजी ने एक क़मीज़ अपने कपड़ों में से निकालकर प्रोफ़ेसर पर फेंक दी, और बोलीं—

"हज़ार मर्तबा कह दिया तुमसे कि अपने कपड़े मेरे कपड़ों में न मिलने दो, मगर तुम्हें ख़याल ज़रा भी नहीं ! यह कहाँ से आई ?"

प्रोफ़ेसर ने क़मीज़ को उलट-पलटकर देखते हुए उत्तर दिया—

"तुम जानो, तुम्हारे कपड़ों में निकली है।"

"मैं क्या जानूँ, तुम्हीं डाल गए होगे।"

"मैं क्यों डाल जाता? क्या मेरे बक्सों में जगह न थी?"

"मुझे ज़रूरत थी शायद इसकी, क्यों?"

"नहीं ज़रूरत थी, तो फिर आई कैसे?"

"तुम पागल हो गए हो प्रोफ़ेसर!"

"मैं नहीं पागल हूँ, तुम ज़रूर हो गई हो। देखो घड़ी की तरफ़, क्या बजा है?"

देवीजी ने घड़ी पर दृष्टि डाली, और दूसरा सूटकेस बंद करती हुई बोलीं—

"अच्छा, मैं कपड़े बदलने जाती हूँ, यह तीसरा अटैची तुम पैक कर देना। वक़्त नहीं है अब, समझे?"

प्रोफ़ेसर अटैची की तरफ़ लपके।

* * *

जब मैडम कपड़े बदलकर आईं, उस समय—

पतिदेवता को अटैची बंद करने की कोशिश में तन-मन से लगा हुआ पाया।

अटैची में इतना सामान घुस गया था कि उसे बंद करना कठिन था।

प्रोफ़ेसर रह-रहकर ज़ोर लगाते। एक तरफ़ बंद हो जाता,

तो दूसरी ओर खुला रहता, और जब उस तरफ़ बंद करने की कोशिश करते, तो इस तरफ़ खुल जाता! प्रोफ़ेसर ने लाचारी में पत्नी की ओर देखकर कहा—

"खड़े-खड़े तमाशा देख रही हो? इस पर बैठ जाओ ज़रा।"

श्रीमतीजी अटैची पर बैठ गईं।

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"लो, यह बंद हो गया। अब ताला कहाँ है?"

"वह रहा—पलँग पर सिरहाने।"

"उठा दो ज़रा।"

श्रीमतीजी उठकर जैसे ही खड़ी हुईं, वैसे ही अटैची खट् से खुल गया, और उसका पल्ला नीचे सिर झुकाए प्रोफ़ेसर की नाक में ज़ोर से लगा। प्रोफ़ेसर ने कहा—

"बाप रे!"

श्रीमतीजी ताले की खोज करना भूलकर, पीछे देखकर बोलीं—

"अरे! यह क्या? तुम्हारी नाक से ख़ून?"

प्रोफ़ेसर ने झुँझलाकर उत्तर दिया—

"तुम्हारी बला से! तुम तो उठ गईं झट से—कहा भी नहीं?"

"मैं उठ गई? क्यों झूठ बोलते हो प्रोफ़ेसर! तुम्हीं ने तो ताला माँगा था?"

"मैंने ताला माँगा ज़रूर था, मगर तुमसे यह कब कहा था कि उठकर खड़ी हो जाओ ? मेरी नाक लोहू-लुहान हो गई !"

"आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं ! मैंने कहा था कि नाक फोड़ लो अपनी, क्यों ?"

बकती-झकती देवीजी एक लोटे में पानी ले आईं। फिर बोलीं—

"धो डालो, और 'जंबक' लगा लो, ठीक हो जायगा।"

प्रोफ़ेसर उनके हाथ से पानी का लोटा छीनते हुए कहने लगे—

"ठीक तो हो ही जायगा, मगर तकलीफ़ किसे हुई ?"

श्रीमतीजी को हँसी आ गई। उन्होंने मुँह फेर लिया।

वह बाक़ी सामान पैक करने में जुट गईं।

कुछ सावधान होकर प्रोफ़ेसर ने अटैची बंद करके ताला लगाया, और बोले—

"अच्छा, सब तैयारी हो गई। अब चलना चाहिए।

❋ ❋ ❋

नौकर बुलाया गया।

वह सामान उठाकर नीचे ले जाने लगा। देवीजी अचानक बोलीं—

"मेरी चाभियों का गुच्छा ?"

प्रोफ़ेसर चौंक पड़े—

"चाभियों का गुच्छा ? कहाँ रक्खा था ?"

कुछ सोचकर मैडम ने कहा—

"शायद अटैची में बंद हो गया—एक रूमाल में बँधा था !"

"फिर निकले कैसे ? मैंने तो ताला बंद कर दिया ?"

"कितने लापरवाह हो प्रोफ़ेसर ! अब क्या हो ?"

"मुझे क्या मालूम कि तुमने अटैची में रख दिया है।"

"वाह ! तुम्हारी आँखों के सामने ही तो मैंने सामान पैक किया है !"

"मेरी आँखें इतनी तेज़ नहीं। और फिर, तुम्हें ख़ुद ही ध्यान रखना था। ताला भी लगवा दिया, अब चाभियों का गुच्छा कैसे निकले ?"

"उसके बिना तो काम ही नहीं चलेगा।"

प्रोफ़ेसर दोनो हाथों से सिर पकड़कर बैठ गए। वह बोले—

"औरतों की अक़्ल उल्टी ही होती है !"

देवीजी उबल पड़ीं, और चिल्लाकर बोलीं—

"मर्दों की अक़्ल तो ठीक रहनी चाहिए न ? जनाब क्यों चूक गए ?"

"देखो, मुफ़्त की बकवाद मुझे पसंद नहीं।"

"तो फिर ताला खोलिए, देर होती है।"

नौकर ने सामान वहीं रख दिया।

"मैं कैसे खोलूँ ?"

"जैसे भी हो, चाभियाँ तो निकालनी ही पड़ेंगी !"

प्रोफ़ेसर अपने कमरे में गए, और ढूँढ़-ढाँढ़कर एक पुरानी चाभियों का गुच्छा ले आए। सौभाग्य से ताला खुल गया। अटैची का सारा सामान निकाला, मगर चाभियों का गुच्छा नदारद ! प्रोफ़ेसर ने पूछा—

"अब क्या कहती हो ?"

श्रीमतीजी ने उत्तर दिया—

"तो बड़े बक्स में होगा।"

"उसका भी ताला तोड़ने का फ़र्मान दे रही हो ?"

"मैं नहीं जानती। चाभियों का गुच्छा तो निकालना ही होगा।"

प्रोफ़ेसर ने सूटकेस का ताला खोलने की कोशिश की, मगर नाकामयाब रहे।

कई चाभियाँ लगाईं, मगर वह न खुला—न खुला।

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"अब तो गाड़ी मिल चुकी !"

श्रीमतीजी खीझकर बोलीं—

"सब आपकी बदौलत !"

"मेरी बदौलत ? झूठा इलजाम न लगाओ मुझे।"

"बेशक, ग़लती आप ही की है।"

"मेरी कोई ग़लती नहीं। तुम्हें ख़याल रखना था अपनी चीज़ों का।"

"आप तो शायद तमाशा देखने आए थे?"

"अच्छा, चलो, दिल्ली पहुँचकर देखा जायगा। बलदेव! सामान उठाओ।"

नौकर बक्स उठाने के लिये लपका ही था कि मेडम ने डाँट बताई—

"नहीं, पहले चाभियों का गुच्छा निकालना होगा। अभी मुझे कैशबक्स से रुपए भी तो निकालने हैं?"

प्रोफ़ेसर मानो चौंक पड़े। उन्होंने आश्चर्य से कहा—

"रुपए भी अभी तक नहीं लिए! क्या ख़ूब!"

"अच्छा, जल्दी कीजिए। खोलिए बक्स, जैसे भी हो।"

प्रोफ़ेसर ने ताला तोड़ डाला। सारा सामान, कपड़े-लत्ते उलट-पुलट डाले, मगर चाभियों का गुच्छा नदारद! प्रोफ़ेसर ने पूछा—

"अब?"

देवीजी ने जवाब दिया—

"दूसरे सूटकेस में होगा—ज़रूर होगा।"

"तो मैं सारे सूटकेसों के ताले तोड़ता रहूँ?"

"चाभियों का गुच्छा तो ढूँढ़ना ही होगा।"

प्रोफ़ेसर कड़ककर बोले—

"बलदेव ! सामान ले चलो। अब मुफ़्त की परेशानी नहीं उठाई जाती।"

श्रीमतीजी चिल्लाती ही रहीं, मगर सामान नीचे ताँगे पर पहुँचा दिया गया। जैसे-तैसे वे लोग स्टेशन की तरफ़ रवाना हुए।

*　　*　　*

स्टेशन पहुँचकर प्रोफ़ेसर ने देखा—टिकट-घर पर बड़ी भीड़। जैसे-तैसे टिकट लिया, प्लेटफ़ार्म पर आए, दिल्ली जानेवाली गाड़ी छूट चुकी थी! घड़ी पर नज़र डाली—पूरा दस बज रहा था!

वह देवीजी की ओर देखकर बोले—

"आख़िरकार गाड़ी छुड़वा दी तुमने ?"

मैडम ने जवाब दिया—

"मैंने छुड़वा दी ? क्यों, क्या मुझे दिल्ली नहीं जाना था ?"

"जाना जिसे होता है, वह वक़्त के भीतर तैयारी कर लेता है।"

"यह सब दिक़्क़त आपकी वजह से हुई, मानें या न मानें!"

"हाँ-हाँ, मैं ही तो ऐसी परिस्थितियों का कारण बन जाता हूँ। तुम्हारा कोई क़सूर नहीं ?"

"बेशक, मेरा क्या क़सूर ?"

"अच्छा, चलिए वापस। अब हम लोग कहीं न जायँगे।"

"हम लोग मत कहिए। आपकी मर्जी हो, तो आप वापस जा सकते हैं। मैं दिल्ली जरूर जाऊँगी। यह गाड़ी निकल गई, तो क्या शाम की गाड़ी न मिलेगी ?"

"अकेली चली जाओगी ?"

"बेशक, जब आपका इरादा ही नहीं है जाने का।"

"इरादा होने या न होने का सवाल ही नहीं है यह।"

"तो मुझ पर तोहमत क्यों लगाते हैं बेकार कि तुम्हारी वजह से गाड़ी छूट गई ?"

"मैं तो हजार दफा कहूँगा।"

"मैं ऐसी बातें सुनने की आदी नहीं प्रोफ़ेसर !"

"अच्छा, नमस्ते। मैं तो चला।"

"मैं आपको रोकती नहीं, आपकी मर्जी। पचास रुपए देते जाइएगा ?"

"रुपए नहीं हैं मेरे पास इस वक़्त।"

"तो मुसाफिरी करने के लिये खाली हाथ चले थे ?"

प्रोफ़ेसर ने जेब से मनीबेग निकाला, और दस-दस के दो नोट श्रीमतीजी के हाथ पर रखते हुए बोले—

"बस, बीस रुपए हैं मेरे पास इस वक़्त।"

श्रीमतीजी ने नोट लेकर जवाब दिया—

"धन्यवाद ! आप जा सकते हैं।"

प्रोफ़ेसर ने कहा—

"वापस चलो। हर बात में ज़िद अच्छी नहीं होती। जाना

है, तो कल चलेंगे। शाम की गाड़ी पैसेंजर है, उससे जाने में तकलीफ़ होगी।"

"आपकी बला से! मैं तो आज ही जाऊँगी।"

"मेरी बात मानो, चलो। सारे दिन यहाँ भूखी-प्यासी बैठी रहोगी?"

"चिंता न कीजिए। रिफ़्रेशमेंट रूम है यहाँ।"

प्रोफ़ेसर कुछ सोचकर बोले—

"बेहतर है, जाता हूँ मैं।"

वह जाते-जाते फिर घूम पड़े। कहने लगे—

"चलना चाहती हो, तो लौट चलो।"

"उहुँः, मैं शाम की ट्रेन से ज़रूर जाऊँगी।"

"आख़िर इतना उतावलापन क्यों है?"

"मैंने लिख दिया है, वे लोग स्टेशन आएँगे लेने। भला, दूसरे की परेशानी का ख़याल भी तो रक्खा कीजिए?"

"अपने को परेशानी में डालना और दूसरों का ख़याल करना? अगर इतना ही तुम्हें आता होता, तो रोना काहे का था?"

"रोते आप हैं, रोया करें। किसी की क़िस्मत में ही रोना लिखा हो, तो उसे रोके कौन?"

प्रोफ़ेसर ने ठंडी साँस लेकर उत्तर दिया—

"बेशक, मेरी क़िस्मत में रोना लिखा है।"

वह चुपचाप चले गए।

श्रीमतीजी ने इंटर-क्लास के वेटिंग-रूम में कुली से सामान रखवाया, और व्हीलर की दूकान से एक साप्ताहिक पत्र खरीदकर पढ़ने लगीं।

※ ※ ※

पाँच मिनट बाद—

रिफ्रेशमेंट रूम का एक बैरा मैडम के पास आकर पूछने लगा—

"मेम साहब! कुछ सोडा-लेमनेड, चाय?"

मैडम ने जवाब दिया—

"नहीं।" बैरा चला गया।

दो मिनट बाद—

एक टिकट-कलेक्टर ने आकर श्रीमतीजी से पूछा—

"आप कहाँ जायँगी?"

मालती ने अखबार मेज पर रखकर टिकट दिखलाया। टिकट-कलेक्टर ने टिकट देखकर वापस करते हुए कहा—

"गाड़ी तो चली गई?"

मालती ने उत्तर दिया—"जी हाँ, जरा देर से आई थी मैं।"

"अब आपको गाड़ी छ बजे मिलेगी शाम को—बड़ा इंतजार करना पड़ेगा।"

"मजबूरी है।"

टिकट-कलेक्टर थोड़ी देर तक वहीं खड़ा रहा, फिर उसने पूछा—

"आप अकेली ही जा रही हैं दिल्ली ?"

मेडम का माथा ठनका। अपने को सँभालकर वह बोलीं—

"जी हाँ।"

"काफ़ी लंबा सफ़र है। एक तो पैसेंजर-ट्रेन, दूसरे भीड़ बहुत होती है।"

"जी।"

मेडम फिर अख़बार पढ़ने लगीं। टिकट-कलेक्टर चला गया।

वेटिंग-रूम के दूसरे कोने में दो मुसाफ़िर आपस में बातें कर रहे थे। दोनों बुड्ढे—मारवाड़ी जान पड़ते थे। एक ने कहा—

"सुना कुछ ?"

दूसरे ने जवाब दिया—"सुना।"

"ज़माने की ख़ूबी है। इस नई रोशनी ने औरतों के सिर फिरा दिए हैं !"

"सबके नहीं, फ़ैशनेबुल लेडियों के। हमारी-आपकी औरतों में यह हिम्मत कहाँ ?"

श्रीमती मालती घूमकर बैठ गईं।

एक सूटेड-बूटेड नौजवान वेटिंग-रूम में दाख़िल हुआ। उसने मालती को ख़ूब घूरकर देखा। अपने हाथ का सूटकेस

उसने एक कोने में रख दिया, फिर रूमाल से मुँह पोछता हुआ मैडम के पास आ खड़ा हुआ, और बोला—

"माफ़ कीजिएगा। आपको मालूम है, हावड़ा-एक्सप्रेस कै बजे आता है?"

मैडम ने अख़बार की तरफ़ देखते हुए उत्तर दिया—

"मुझे नहीं मालूम।"

"थैंक्यू! आप कहाँ जा रही हैं?"

"दिल्ली।"

वह नौजवान पास रक्खी हुई कुर्सी पर बैठ गया, और बोला—

"तब तो साथ रहेगा हमारा-आपका!"

मैडम को ग़ुस्सा लग रहा था। नवयुवक ने फिर पूछा—

"कितने बजे हम लोग दिल्ली पहुँचेंगे?"

जवाब मिला—

"पता नहीं।"

श्रीमती मालती उठ खड़ी हुईं, और प्लेटफ़ार्म पर आकर टहलने लगीं।

सामने से एक दूसरा टिकट-इंस्पेक्टर आ रहा था। उसने पूछा—

"आपका टिकिट?"

मैडम ने टिकट दिखला दिया। इंस्पेक्टर ने कहा—

"आप अकेली ही जा रही हैं दिल्ली?"

मैडम सोचने लगीं, मेरे अकेलेपन की चिंता सभी को सता रही है। बड़े हमदर्द हैं लोग।

उन्होंने जवाब दिया—

"जी हाँ।"

"आपका दौलतखाना यहीं है?"

"जी।"

"कहाँ रहती हैं?"

मालती का टेंपरेचर बढ़ गया।

"जहन्नुम में!"

मैडम की लाल आँखें देखकर टिकट-इंस्पेक्टर दुम दबा लंबा पड़ा।

उधर से एक रेवड़ीवाला आ रहा था। श्रीमतीजी को देखकर पास आया, और बोला—

"मेम साहब! कड़ाकेदार, तड़ाकेदार, धड़ाकेदार, रेवड़ियाँ! कंट्रोल रेट—बारह आने सेर! एक चखकर देखिए?"

उसने एक बड़ी-सी रेवड़ी आगे बढ़ाई। मैडम गरज उठीं—

"बदमाश! चल यहाँ से।"

रेवड़ीवाला चुपचाप मैडम को देखता हुआ वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हुआ।

मालतीदेवी कुछ और आगे बढ़ीं। एक बिसाती पास आकर बोला—

"मेम साहब ! बरेली का सुर्मा—असली क़दीमी मुबारक अली की दूकान का। आँखों में लगाइए, नैन-बान चलाइए। आहा हा ! क्या सुरमा बनाया है। तरावट—एकदम बर्फ़ के मानिंद। दिलोदिमाग़ को ताज़ा रखता है।"

मेडम के मुँह से निकला—

"ब्लडीफ़ूल !"

बिसाती लंबा पड़ा। पास से निकले हुए पानवाले ने बोला—

"रामबसावन ! उधर मत जाना। खिसिआई बिल्ली है, काट ही खाएगी !"

पानवाले ने जवाब दिया—

"मियाँ से लड़कर आई होगी !" दोनों हँस पड़े !

मेडम ख़ून का घूँट पीकर रह गई। आफ़त का मारा सैंडिल-चप्पलों का व्यापारी पास आकर बोला—

"हुज़ूर ! मेम साहब ! चप्पलें लेती जाइए। लखनऊ की कारीगरी—मख़मल पर ज़री का काम ! क़सम ख़ुदा की, हिंदोस्तान के परदे पर यह तोहफ़ा न मिलेगा।"

मालती क्रोध से बोली—

"पटक लो अपने सिर पर !"

चप्पलवाला लंबे-लंबे डग रखता हुआ भाग निकला।

* * *

ठीक साढ़े बारह बजा था।

प्रोफ़ेसर अपने बँगले के बरामदे में बैठे हुए एक पुरानी मासिक पत्रिका के पन्ने उलट रहे थे। सामने मेज़ पर बिजली का पंखा चल रहा था।

उन्होंने देखा—एक ताँगा सामने आकर रुका, और उस पर से उतरीं मैडम मालती। ताँगेवाले ने सामान उतारकर नीचे रक्खा।

प्रोफ़ेसर के होठों पर मुस्किराहट आई, मगर वह कुछ न बोले।

पैसे पाकर ताँगेवाला चला गया। मैडम भीतर गईं। प्रोफ़ेसर भी पीछे-पीछे पहुँचे। मैडम जाकर पलँग पर लेट रहीं। प्रोफ़ेसर ने पंखा खोलते हुए कहा—

"बड़ी गर्मी है!"

देवीजी ख़ामोश थीं। प्रोफ़ेसर ने सुराही से एक गिलास पानी देते हुए कहा—

"पानी पी लो—ठंडा है!"

मैडम ने गिलास लेकर पानी पिया। उनके माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं।

प्रोफ़ेसर ने पूछा—

"दिल्ली नहीं गईं?"

मैडम ने घूरकर उनकी तरफ़ देखा, और धीरे से बोलीं—

"जी नहीं।"

उनकी आँखें नीचे फ़र्श को देख रही थीं!